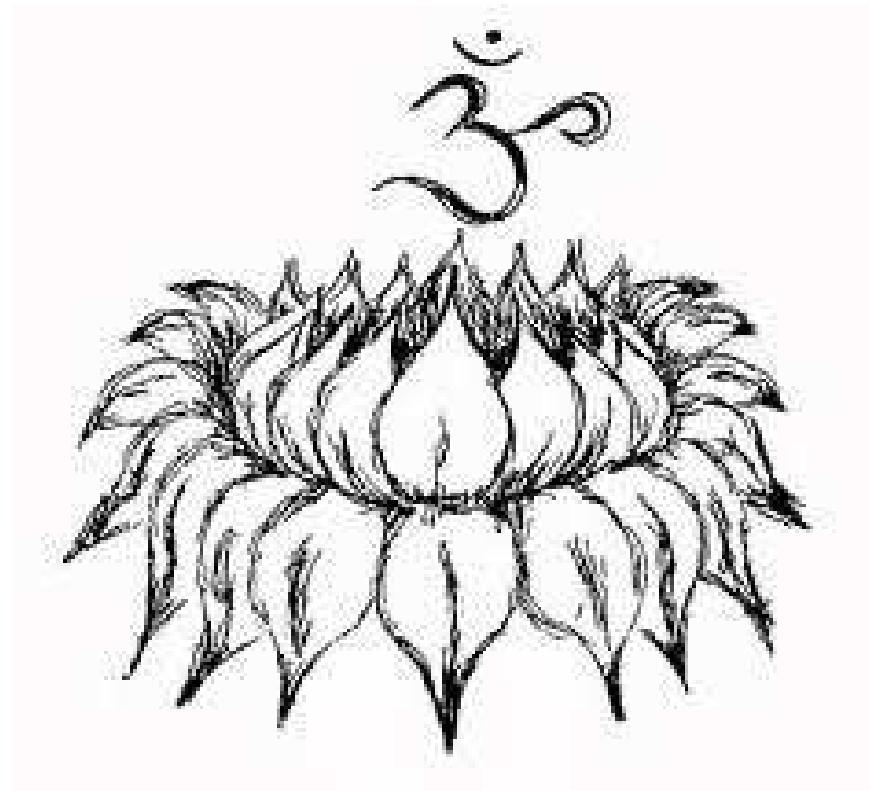

विभाग : 22

विभिन्न मंत्रों पर
आधारित ध्यान



प्रणवादि मंत्र ध्यान

ध्यान सूक्ति - 182

विविध प्रणव से ध्यान धरो भाई, भव सागर से पार हो जाई।।

ध्यान विधि - 182

प्रणवादि मंत्रों का ध्यान
करके संसार चक्र के पाद
उतर जाओ ।

प्रणव को सभी विकारों
से अतीत कहा है। अर्थात्
यह ध्वनि निर्विकारी है अर्थात्
अनाहत नाद है। वह केवल
प्रसन्नता की प्रदाता है, विधेयक
है। किन्हीं दो चीजों के टकराने
से नहीं परंतु जो नाद स्वतः
उत्पन्न होता है उसे निर्विकारी
कहते हैं। दोस्तो! कुछ ध्वनियाँ
विघातक होती हैं। ऐसी ध्वनियों
से दुःख, दर्द, पीड़ा और
कर्कशता का अनुभव होता
है। परंतु प्रणव आदि ध्वनियाँ
केवल सुख और शांति का
अनुभव कराती हैं।

प्यारे साधको!

ध्यान मंत्र है और मंत्र ध्यान; क्योंकि मंत्र का एक अर्थ है रहस्य और ध्यान भी एक रहस्य है। मंत्र को पढ़ना, मंत्र को जपना, मंत्र का प्रयोग करना और मंत्र ध्यान बन जाना, इन सब बातों में काफी फर्क है।

मैं कहती हूँ कि गहन मंत्र भाव भी ध्यान है। मंत्र की गहनता में संपूर्ण भाव जगत से प्रवेश हो जाने के बाद साधक बे-ध्यान नहीं रह सकता। दोस्तो! यहाँ शिव भगवती पार्वती को ध्यान विधि बताते हुए कहते हैं कि ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत क्रम से प्रणवादि मंत्रों का उच्चारण करें। लंबे समय तक इस प्रकार अनुक्रम से उच्चारण में स्थिर होने से साधक परागति को प्राप्त करता है। इस गति की उपलब्धि के लिए शिव ने अनेक विधियाँ बताई हैं।

प्यारे साधको!

ये परागति क्या है? ज़रा ध्यान दीजिए। ज्यादातर तीन शब्दों का प्रयोग होता है – गति, अधोगति तथा उर्ध्वगति। उर्ध्वता की पराकाष्ठा है परागति। साधना में उर्ध्वगति का अर्थ है – समापत्ति की उच्चतम

अवस्था। जहाँ साधना और साधक अदृश्य हो जाते हैं और सिर्फ साध्य उसके विशुद्ध रूप में बचता है। वहाँ सिर्फ एक अवस्था की ही मौजूदगी रहती है। व्यक्ति मौजूद होने पर भी मौजूद नहीं होता।

तंत्र मनुष्य को हमेशा स्वतंत्रता देता है। स्वतंत्रता में मनुष्य सुख का अनुभव करता है। पराधीनता अथवा दबाव में मनुष्य की चेतना संकुचित हो जाती है। परतंत्रता में उसका विकसित होना संभव नहीं। शिव स्वतंत्रता के हिमायती हैं। मुक्ति उसका परम स्वभाव है। मुक्त ही मुक्ति दे सकता है। इस विधि में शिव ने यह नहीं कहा कि प्रणव का ही ध्यान करो परंतु ऐसा कहा है कि प्रणवादि के सम्यक उच्चारण से परागति को प्राप्त कर लो।

शिव बहुत उदार चित्तवान हैं। शिव के बाद शिव के मत को लेकर शैव मार्ग प्रारंभ हो गया यह बात अलग है परंतु शिव की वाणी को धार्मिक, सांप्रदायिक संकुचितताओं में आप नहीं बांध पाएंगे। इसी वजह से तो उन्हें परमात्मा कहा है। जो भी ऊर्जा धर्म, संप्रदाय की सीमाओं से ऊपर उठकर शाश्वत बोध को प्रदान करती है तब वह समाज के लिए भगवान या परमात्मा बन जाती है। उसकी वाणी प्रत्येक मनुष्य के लिए कल्याणकारी सिद्ध होती है। ऐसी आत्माएं सबका कल्याण चाहती हैं। वहाँ ऊंच-नीच, ज्ञानी-मूढ़ और जाति-पांति के भेद बहुत दूर छूट जाते हैं। इसलिए ऐसी आत्मा को हर कोई चाहे यह स्वाभाविक है।

प्यारे साधको!

अब आईए विषय की ओर। प्रणव के कई भेद हैं। जिनमें से प्रमुख तीन माने गए हैं। ॐकार वैदिक प्रणव है, हूंकार शैवागम प्रणव है

और हींकार शाक्तागम है। आगम का अर्थ होता है प्राज्ञ पुरुषों की वाणी, प्रबुद्धात्माओं की वाणी।

प्यारे साधको!

पहले तो प्रणव का अर्थ समझ लीजिए। पांडित्य के साथ मेरा ज्यादा लेना देना नहीं है परंतु इतना जरूर कहूंगी कि जिस विधि से आप गुजर रहे हो अथवा गुजरना चाहते हो, उस विधि के पारिभाषिक शब्दों को पहले भलि भांति समझो। सही समझ ही सही मंजिल की ओर ले जा सकती है।

प्रणव का अर्थ है – पवित्र अक्षर। वैसे तो शिव के लिए सबकुछ पवित्र है। यही तो शिव का शिवत्व है। शिव बहुत उदार हैं। लोग जिन-जिन चीजों को अपवित्र मानते हैं; उन सारी चीजों को शिव ने अपनाकर पावन बना दिया। अगर ज्ञान दृष्टि से देखा जाए तो हर अक्षर पवित्र है।

मैं तो कहूंगी कि पवित्र अथवा अपवित्र कुछ भी नहीं है। मन के पवित्र और अपवित्र भाव के जुड़ने से शब्द पवित्र और अपवित्र ऐसे दो भाग में विभाजित हो जाते हैं। प्रणव का एक अर्थ है – ॐ। प्रणव का एक अर्थ है – परमात्मा का विशेषण। दोस्तो! शिव की वाणी समझने का भी एक मज़ा है। जैसे परमात्मा सर्वसाक्षी है फिर भी उसे ओमनीप्रेजेन्ट, ओमनीपोटेन्ट और ओमनीशन्ट कहे हैं वैसे ही यह पवित्र अक्षर ॐ भी साक्षी मात्र है। फिर भी सर्व से शक्तिमान और सर्वव्याप्त है। इसलिए तो ॐ को शब्दब्रह्म कहा है। वह ब्रह्म की तरह हर ध्वनि में व्याप्त है। आप उसे कानों से पकड़ पाएं न पकड़ पाएं यह बात अलग है परंतु वह ध्वनि, सूक्ष्म नाद और नादांत के रूप में अंतरिक्ष में फैली हुई है।

दोस्तो! जहाँ शब्द नहीं है वहाँ शांति है। ऐसा मनुष्य समझ लेता है परंतु वास्तव में वहाँ मौन होता है, निःशब्द होता है अर्थात् शब्द सुनाई नहीं दे इतनी निरवता होती है; तब मनुष्य को शांति का अनुभव होता है। परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि आप जब शांति का अनुभव करो तब वातावरण में शब्द की गैरमौजूदगी हो। वास्तविकता यह है कि मनुष्य की सुनने की क्षमता सीमित है। परंतु ध्वनि तथा नाद असीम है। वह अंतरिक्ष में प्रतिध्वनि के रूप में छाया रहता है।

भौतिक विज्ञान अथवा पदार्थ विज्ञान कहता है कि विश्व में किसी भी वस्तु का पूर्णतः नाश नहीं होता। केवल रूपांतरण होता है। इस रूपांतरण में विश्वचक्र का अस्तित्व है। वही ईश्वर की लीला है। मैं कहती हूँ कि जिस तरह से पदार्थ का नाश नहीं होता परंतु रूपांतरण होता है और पदार्थ के परिवर्तन से किसी प्रतिपदार्थ उत्पत्ति का सिद्धांत है वैसे ही शब्द का भी नाश नहीं होता। ध्वनि के सामने प्रतिध्वनि का सिद्धांत अवश्य है।

आधुनिक विज्ञान ब्रह्मांड की कुछ ऐसी ध्वनियाँ जो मनुष्य के शब्दों का परिणाम है उसे सूक्ष्म यंत्रों से पकड़ने का प्रयास कर रहा है।

दोस्तो! इस बात को इसलिए कह रही हूँ कि ब्रह्मांड में कोई भी शब्द नाश्वंत नहीं है। एक बार किसी भी शब्द के उच्चारित हो जाने के बाद उसका ब्रह्मांड में विस्फोट होकर सूक्ष्म प्रतिध्वनि के रूप में वह घूमता रहता है। इसलिए इस सत्य का हमेशा स्मरण रखकर मनुष्य को ऐसी वाणी का उच्चारण ही करना चाहिए जिससे ब्रह्मांड में नकारात्मक ध्वनियाँ पैदा न हों। ऐसा नहीं कि पूरा ब्रह्मांड ध्वनियों से भर गया है अभी ब्रह्मांड में बहुत शून्यावकाश है। वहाँ ध्वनिशून्यता है। अस्तित्व ने इस सृष्टि को

इतनी विराट और रहस्यमय बनाई है कि मनुष्य के हर कर्म, तर्क और प्रश्नों का जवाब उसके पास से एक अलग तरीके से प्राप्त होते हैं।

प्यारे साधको!

याद रहे, वाणी का आधार मन है। जीव्हा, ओष्ठ, दांत, तालू और स्वरपेटी से तो वाणी केवल ध्वनित होती है उसका स्थूल उच्चारण होता है परंतु उसका सूक्ष्म रूप तो मनुष्य के मन में तैयार होता है। सिगमन्ड फ्राइड ने चालीस वर्ष तक अभ्यास करने के बात कहा कि मन स्वयं दूषित है, जिससे वह दूषण ही फैलाएगा। सांख्य भी मन के पक्ष में नहीं है। पतंजलि कहते हैं कि मन को मार दो। कृष्णमूर्ति जैसे भी ध्यान में मन का सहयोग लेने के पक्ष में नहीं हैं। परंतु केवल तंत्र कहता है कि मन का उपयोग करके मन के पार चले जाओ। यह विधि दूषित मन को विशेष रूप से दूषित होने से बचाने के उपरांत अ-मन की अवस्था में जाने का उपाय है।

आधुनिक विज्ञान तंत्र की सूक्ष्मताओं से काफी करीब महसूस होता है। आधुनिक विज्ञान कुछ रोगों से बचने के लिए उस रोग के अर्धजीवित जंतु मनुष्य के शरीर में डालता है जिससे मानव देह उस रोग के कीटाणुओं से लड़ते लड़ते रोग विशेष के सामने प्रतिकारक शक्ति प्राप्त करे लेता है। इसका अर्थ क्या हुआ? इसका अर्थ है – ज़हर का मारण ज़हर। और तंत्र का सिद्धांत है मन का मारण मन।

आप मन की तीव्र धारणाओं के द्वारा ही मन के पार जाने की विधियों से अवगत हो रहे हो। जिसे तंत्र शून्याकारता में प्रवेश कहता है। वही परागति है और वही समाधि की अवस्था।

दोस्तो! तंत्र किसी के विरोध में नहीं है। यहाँ मन की उपेक्षा नहीं करनी है, मन के साथ लड़ना नहीं है, कब तक लड़ोगे; जब तक आपका अस्तित्व है तब तक मन है। अगर आप मन के साथ लड़ोगे तो रोज़ लड़ना पड़ेगा, लड़ते लड़ते जीवन समाप्त हो जाएगा। यह तो ठीक नहीं है। इसलिए तंत्र मन से अ-मन होने के लिए उसका एक विशेष प्रकार से उपयोग करने की विधि बताता है। कई ध्यानियों को इन विधियों से समफलता भी प्राप्त हुई है। इसी परिपाटी में कुछ विधियाँ मैं आपको मौलिकता से बता रही हूँ।

विधि कहती है कि प्रणव अथवा प्रणव जैसा कोई भी मंत्र का प्रथम – द्रुत, फिर मध्य और फिर मंद गति से उच्चारण करो। आपके मन को उस उच्चारण में स्थिर कर दो।

प्यारे साधको!

तंत्र कहता है कि मनुष्य का मन दिन रात अनेक विषयों में रत रहता है। विषय के बिना वह जिंदा नहीं रह सकता। तंत्र मार्गियों ने मन को अनेक विषयों के स्थान कोई एक विषय देकर उसे उसमें स्थिर करने का अभ्यास बताया है। स्थिर होने के बाद शांत और शांत होने के बाद अदृश्य कर देने की विधियाँ ढूंढी हैं। वही है तांत्रिक ध्यान विद्या।

दोस्तो! वैसे भी मानव मन असंख्य शब्दों से भरा है, कोलाहल से भरा है, वह अंदर अंदर बोलता ही रहता है, उसके पास शांति की कोई धारणा नहीं है। भीतर का हंगामा, अशांति और अस्थिरता ही मन है। उसको कोलाहल को कम करने का प्रारंभिक उपाय है धारणा। मन को कोई ऐसी धारणा दे दो कि मन उसे पकड़कर उसमें स्थिर होता जाए। उस

स्थिरता और शांति की विकसित अवस्था है ध्यान। संपूर्ण शांत और शून्य अवस्था है-समाधि।

दोस्तो! इसे आप अनुभव से ही समझ पाएंगे। मैं चाहूँ तो आपको बुद्ध, महावीर, गुर्जीएफ, कपिल उपरांत पश्चिम के कई फिलसुफरों की तर्कबद्ध बातें कर सकती हूँ। जो आपको विशेष प्राभावित कर सकती है। परंतु मैं आपको प्रभावित करना नहीं चाहती हूँ। मेरा मकसद लोगों को मेरे प्रभाव में लेना नहीं। मेरा मकसद है मनुष्य स्वयं की शक्ति के प्रभाव को जाने और ध्यान में उतरे। मैं नहीं चाहती हूँ कि आप ध्यान के बारे में बड़ी बड़ी बातें सीख लें। परंतु यह चाहती हूँ कि आप ध्यान को सीखें।

प्यारे साधको!

विधि कहती है कि प्रणवादि की क्रमिक और सम्यक उच्चारण से साधक परागति को प्राप्त करता है। दोस्तो! यहाँ क्रमिक और सम्यक दो शब्द समझने योग्य हैं। इन पर थोड़ा ध्यान दीजिए। क्रमिक का अर्थ है प्रारंभ में शीघ्र गति से उच्चारण करना, फिर मध्यम गति से और फिर मंद गति से। तंत्र में व्याकरण शास्त्र के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग है। ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत। जब तक आप इन तीनों शब्दों को नहीं समझेंगे तब तक नहीं समझ पाएंगे कि विधि में से कैसे गुजरना है। आधुनिक पढ़ाई में से ये सारे शब्द धीरे धीरे लुप्त होते जा रहे हैं। इसलिए मुझे विशेष स्पष्टता करनी पड़ती है।

मैं जानती हूँ कि ध्यान में ज्यादा दृष्टान्तों की या बड़े बड़े सिद्धांतों की चर्चा की जरूरत नहीं है। परंतु विधि के संदर्भ में सही समझ की जरूरत है। थोड़ा सत्संग इसलिए जरूरी है कि आपका विधि में रस जगे। परंतु उसकी शब्दावलियों को समझना अनिवार्य है। क्योंकि साधक जब

तक तंत्र विज्ञान में आती हुई शब्दावली को नहीं समझेंगे तब तक उलझता रहेगा।

तो सबसे पहले ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत क्या है? इसे समझिए। ह्रस्व का अर्थ है – छोटा उच्चारण। वैसे तो यह लिपिबद्ध करने का विषय नहीं है। उच्चारण यह एक प्रेक्टिकल विषय है परंतु जहाँ वाणी को लिपि में उतारने की बात आती है। वहाँ कुछ सांकेतिक भाषा से बात को समझाना पड़ता है। हमारे भाषा शास्त्रियों ने इस सत्य को समझाने के लिए कुछ लिखित संकेतों का उपयोग किया है, जिसे लिपि कहते हैं। हमारी वर्णमाला में ह्रस्व और दीर्घ दो प्रकार की मात्राएं हैं। अर्थात् छोटे और बड़ी मात्रा को समझाने के लिए कुछ विशेष संकेत दिए हैं। ह्रस्व का अर्थ है छोटा उच्चार करना और दीर्घ का अर्थ है लंबा उच्चार। जैसे कि इ और ई। तो उन दोनों में पहली इ ह्रस्व है और दूसरी दीर्घ। यह बात उन मात्राओं के जानकार के द्वारा उच्चार करके समझाने पर ही विशेष रूप से स्पष्ट होती है। ह्रस्व क्रम में बोले जाने वाले शब्दों का त्वरित उच्चार होता है। जैसे ॐ को तीन बार ह्रस्व स्वर में बोलना है तो एक साथ ॐ ॐ ॐ उच्चारण होगा। फिर दीर्घ में लंबा करके बोलने में ॐ... ॐ... ॐ... ऐसे उच्चारित होगा। फिर प्लुत उच्चारण में ॐ..... का पूरा वर्तुल बनेगा। इस क्रम भेद से जब साधक धीरे धीरे आगे बढ़ता हुआ मंत्र में स्थिर होता है तब उसे सम्यक उच्चारण कह सकते हैं। इस क्रम भेद को भाषा शास्त्र के आचार्य कुक्कुट वत उच्चारण नाम से समझाने का प्रयास करते हैं। जैसे मुर्गा बांग देता है तब पहले छोटा उच्चारण करता है, फिर कुछ तेज गति से और फिर प्लुत स्वरों से अर्थात् लंबा उच्चारण करता है।

उपनिषद् कहते हैं कि साधक जब इस प्रकार से प्रणव का उच्चारण करता है तब उसकी आत्मा परम शांति का अनुभव करती है।

प्यारे साधको!

हमारे उपनिषद् बड़े उदार हैं। उपनिषद् कहता है कि प्रणव के देवता पुरुष है। पुरुष का अर्थ यहाँ स्त्री और पुरुष से मत जोड़ना, यहाँ पुरुष का अर्थ आत्मा ऐसा अभिप्रेत होता है। उपनिषद् ने कहा कि प्रणव को जपके देवत्व में प्रवेश कर लो। मनुष्यता से ऊपर उठ जाओ। मन के पार चले जाओ। बन जाओ देव, मंत्र के देव आप ही हैं। अर्थात् मंत्र आपके वश में है। आप उसे जपने की विधि सीख लो। उसके गुरु को जान लो, उसके इल्म को जान लो।

ध्यान मार्ग के आचार्य कहते हैं कि ॐकार चार अक्षर, चार पद, और चार मात्रा वाला है। ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत तो उसके स्थूल रूप हैं। यह तो केवल विधि समझाने के लिए हैं। परंतु केवल शब्दोच्चार से कुछ नहीं होगा। कभी कभी लोग शब्दों को पकड़कर स्थूल क्रिया में उलझ जाते हैं और सफलता दूर रहती है। ऐसा मत करना। तीन प्रकार का उच्चारण तो एक थियरी मात्र है। जैसे कि तैरना। तैरने के लिए पहले कोच आपको कुछ तरीके समझाते हैं। जैसे कि पानी में कैसे कूदना? कैसे रिंग का सहारा लेना? कैसे हाथ पैर हिलाना? फैफड़ों में कैसे हवा भरना, हवा को कब निकालना? मुंह कब खुला रखना और कब बंद रखना? मस्तक और शरीर की पोजीशन कैसे रखना?..... इत्यादि। परंतु इससे तैराकी नहीं आ जाती। ये सब तो मात्र सूचनाएं हैं। एक सफल तैराक बनने के लिए सच्चा पुरुषार्थ तो पानी में कूदने के बाद ही शुरू होगा। खतरों का पता तभी लगेगा। डूबने का भय भी लगेगा। बचने का इल्म

भी अचानक हाथ लग जाएगा। और ऐसा होते होते एक क्षण ऐसा आएगा कि शरीर किसी भी आधार के बिना तैरने लगेगा। आत्मविश्वास अचानक बढ़ जाएगा और ऐसा लगेगा कि चमत्कार हो गया। जैसे दुनियां की सबसे बड़ी सिद्धी आपके हाथ लग गई।

दोस्तो! ऐसा ही ध्यान में है। फिर भी थियरी तो बतानी ही पड़ती है। जब आप ध्यान में उतरेंगे तभी आपको पता चलेगा कि आपके साथ क्या हो रहा है?

प्यारे साधको!

प्लुत उच्चारण द्वारा समस्त ॐकार का मंत्र करके एक आवर्तन पूरा करने से साधक का हृदय प्रकाश और शांति से भर जाता है। ध्यानाचार्य ब्रजवल्लभ द्विवेदी इसके लिए एक सुंदर उदाहरण देते हुए कहते हैं कि जैसे कांसे का खाली बर्तन बजाने पर बहुत देर तक वह बजता रहता है, उसी तरह गुरु अक्षरों को बहुत देर तक बोलते रहने से उस उच्चारण को प्लुत कहा जाता है। प्लुत उच्चारण की विश्रान्ति हो जाने पर शांति की अनुभूति होती है और शून्य की भावना करने से पराशक्ति (मनुष्य के भीतर की गुप्त सर्वोच्च शक्ति) की सहायता से साधक शून्यता को अर्थात् भेद रहित द्वैत विवर्जित परम भैरव स्वरूप को प्राप्त करता है।

इस अवस्था को योगीजन उन्मना अवस्था कहते हैं। उन्मना अवस्था को मैं मनोमुक्ति की स्थिति कहती हूँ कि जिस क्षण में साधक मन से पूर्णतः मुक्त हो जाता है। और निर्विशायी शिवावस्था में उसका सहज प्रवेश हो जाता है। यह शून्यातिशून्य पद है।

प्यारे साधको!

एक बात और समझ लें; और विशेष ध्यान दे। सामान्य रूप से सभी ध्यान गुरु बताते हैं कि अ, ऊ, और म इन तीन अक्षरों के मेल से ॐ बना है। यह तीन अक्षरों की त्रिपुटी है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश की त्रिपुटी से परमात्मा बनते हैं। सत, चित और आनंद की त्रिपुटी से भी परमात्मा अर्थ ही विदित होता है। ब्रह्म, जीव और माया की त्रिपुटी से विश्व का अस्तित्व है। इस तरह सभी धर्मों में त्रिपुटी की महिमा है। यहाँ अ, ऊ, और म की त्रिपुटी को ईश्वर का वाचक कहा है परंतु इन बातों को केवल शाब्दिक रूप से रट लेना या पकड़ लेना निरर्थक है। वह तो कोरा वाणी विलास होगा। उससे कोई अध्यात्मिक फायदा नहीं। दोस्तो! याद रहे! ध्यान तो सभी व्याख्याओं के पार है। ध्यान में व्याख्याओं की आवश्यकता नहीं परंतु संकल्प शक्ति और अनुभूतियों की महिमा है। अ, ऊ, म अक्षर तो स्थूल हैं और ॐ का ध्यान उस परमात्मा का अनुभव है। जो गहन मौन और शांति प्रदान करता है।

मेरा अनुभव है कि ॐ का पूर्ण रूप से उच्चारण करना मनुष्य से संभव ही नहीं है। ॐ केवल अ, ऊ, म का जोड़ नहीं है; उसके उपरांत उसमें अर्धचंद्र, निरोधिका और बिंदु भी है; जिनका उच्चार नहीं हो सकता। शाक्त तंत्र के उपासक अगत्स्य दुर्गा सप्तशती में कहते हैं कि

अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः (१/७४)

अर्थात् उस परमात्म स्वरूप का उच्चारण नहीं किया जा सकता।

अर्धमात्रा होते हुए भी वह अनुच्चार्य क्यों है? इसका अर्थ ही यही हुआ कि ॐकार की कुछ कलाएं केवल भावनागम्य हैं। कहने का

तात्पर्य यह है कि ध्यान भाव जगत का ही विषय है। मनोजगत तो केवल सहायक बनने के बाद अदृश्य हो जाता है।

दोस्तो! मन शब्दों से भरा है। निःशब्द मन को तुम मन नहीं कह सकते हो। ध्यान है मन की शांत और निःशब्द अवस्था अथवा शब्दों के पार की अवस्था अथवा गहन मौन।

ध्यान की कुछ विधियाँ ऐसी हैं कि जहाँ शब्द की नौका से शब्द के पार जाना है। मन आपकी सहायता तभी करेगा जब आप उसे प्रवृत्त रहने के लिए एक खास विषय दे दो। इस सत्य को समझकर तंत्र मार्गियों ने कुछ दिव्य और अनूठे विषयों को धारणा के रूप में तैयार किया। जिनमें से एक है प्रणवादि का सम्यक उच्चारण। अब प्रणवोच्चार का असर कैसे होता है? इसे समझें। इसे समझने के साथ साथ पहले प्रणव की महिमा को जानें।

सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि प्रणव की खोज या उत्पत्ति किसी व्यक्ति के द्वारा नहीं हुई है। वह सृष्टि की उत्पत्ति के साथ ही एक सहज उत्पन्न नाद है। वह किसीके द्वारा इरादे के साथ बोला गया स्थूल शब्द नहीं है। परंतु एक दिव्य और सनातन नाद है। मैं इसे दिव्य इसलिए कह रही हूँ क्योंकि वह स्वयंभू है। वह बिलकुल परमात्मा की तरह है।

दोस्तो! परमात्मा को कोई उत्पन्न नहीं कर सकता। इसीलिए तो ईश्वर को अजन्मा और अविनाशी कहते हैं। ऐसे ही ॐकार नाद इस ब्रह्मांड में स्वयं ध्वनित हुआ है। नाद शब्द के अर्थ और स्थूलता के पार का एक सूक्ष्म स्वरूप है। फिर भी वह अपने में बहुत कुछ समाए रखता है। उसकी शाब्दिक व्याख्या नहीं हो सकती। इसलिए तो प्रणव को ईश्वर का वाचक कहा है।

प्रणव शिव के द्वारा उत्पन्न हुआ है – ऐसे मत देने वाले लोगों को भी समझना चाहिए कि शिवत्व भी एक अवस्था है। वह कोई व्यक्ति नहीं है। वह अवस्था स्वयंभू है। जो अपनेआप प्रगट होती है।

सृष्टि की एक विशेष अवस्था में जो सर्वप्रथम ध्वनि उत्पन्न हुई वह है ॐ। ॐ में सारे ब्रह्मांड की ध्वनियाँ सहज रूप से समाविष्ट हैं। क्योंकि अन्य सभी ध्वनियों का जन्म ॐ का ही विस्तार है।

ॐकार का प्लुत उच्चारण करने से एक वर्तुल पैदा होता है। वह ध्वनिवर्तुल उच्चारणकर्ता के उपरांत पूरे ब्रह्मांड में सूक्ष्म रूप से प्रतिध्वनित होने लगता है। क्योंकि ब्रह्मांड में बहुत सारा अवकाश (खाली जगह) है। वह अवकाश प्रतिध्वनि को उत्पन्न करने में सहायता करता है और किसी भी हकारात्मक ध्वनि की असंख्य प्रतिध्वनि पृथ्वी तक अपार हकारात्मकता उत्पन्न करती हैं। और ये हकारात्मक तरंगे अर्थात् कल्याणकारी तरंगें साधक को अखंड ज्ञानावस्था में पहुंचाने में मदद करती हैं। पृथ्वी पर शांति भी फैलाती हैं। इसी वजह से ऋषि-मुनियों ने और सभी धर्मों ने पवित्र शब्दों और मंत्रों का जप करने पर जोर दिया है।

ॐकार एक विधायक ध्वनि है। भारतीय धर्म शास्त्र के अनुसार परम शिवभक्त गंधर्व पुष्पदंत उसके प्रभाव को उचित रूप से समझ पाया है। शिवमहिम्न स्तोत्र के सताइसवे श्लोक में वह कहता है कि हे शरणदाता शिव! ॐ जैसा अविकारी विशुद्ध नाद समस्त और व्यस्त दोनों रूप से तीनों वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद), तीनों अवस्था (जाग्रत, स्वप्न, सुसुप्ति) और तीनों देव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) को अ, ऊ, म तीन वर्णों से व्यक्त करता है। इस तरह से ॐकार एकाक्षर मंत्र

सूक्ष्म ध्वनि तरंगों से तुरीय धाम अर्थात् तीनों अवस्था से पर धाम तक व्याप्त है और आपका गुणगान करता है।

भगवान पतंजलि भी अपने योग सूत्र में ॐकार को -स तस्य वाचकः - वह उसका वाचक है; ऐसा कहकर अज्ञात ईश्वर की ओर इशारा किया है। दोस्तो! पुष्पदंत भक्त है इसलिए उसने निर्गुण के साथ सगुण का गुणगान किया है परंतु मूल में बात तो प्रणव की महिमा की ही है।

प्यारे साधको!

ॐकार विश्व का प्रथम नाद है, आदि नाद है, अनाहत नाद है। वह स्वयं उत्पन्न हुआ है। यह ध्वनि दिव्य शक्ति का स्रोत है। उसके प्लुत उच्चारण से अर्थात् मंद गति से लंबे और शांत भाव के साथ उच्चरित करने से ब्रह्मांड में और आपके भीतर भी ऊर्जा का अवतरण होता है। ॐकार एक कल्याणमय नाद है। केवल ब्रह्मांड में ही वह प्रतिध्वनित हो रहा है ऐसा नहीं परंतु शरीर के भीतर के ब्रह्मांड में भी वह सजगता से ध्वनित होकर प्राणों का नियमन कर रहा है। उसका लयबद्ध आस्थायुक्त तथा प्रेमपूर्ण हृदय से किया हुआ उच्चार मन के लिए तथा विश्व के लिए हितकर सिद्ध होता है। यह मंत्र शक्तिपात करने की क्षमता रखता है। शिवसंकल्प के साथ उच्चारित ॐ अवश्य ही कल्याण का दाता है। ॐकार में तदाकार होने वाला चित्त एकाग्र हो जाता है और उसका पराशक्ति में समावेश हो जाता है। यह समावेश अवस्था ही समाधि है।

यह ॐकार की ध्वनि स्थूल से जितनी सूक्ष्म होती जाती है अर्थात् वाणी या मन द्वारा होता उच्चार अंतःकरण से उभरने लगता है तब वह रोम रोम को प्रफुल्लित करता है। समग्र शरीर की नाड़ियाँ विशेष

रूप से सक्रिय होती हैं। शरीर के अंगों को विशेष प्राणवायु प्राप्त होने लगता है। फेफड़े, हृदय, कंठ, उदरपटल आदि की स्थिति सुधरती है। ॐकार की ध्वनि से सहज ही सम्यक व्यायाम प्राप्त होता है और रुधिराभिसरण तंत्र, चेता तंत्र, श्वसन तंत्र तथा पाचन तंत्र विशेष रूप से प्रभावित होकर उसका शुभ असर अन्य सभी तंत्रों पर पड़कर मनुष्य के संपूर्ण स्वास्थ्य को सुधारता है।

इन्द्रियां, मन, प्राण और शरीर की प्रसन्नता से साधक को सहज ही शिवत्व की प्राप्ति होती है।

प्यारे साधको!

प्रणव को सभी विकारों से अतीत कहा है। अर्थात् यह ध्वनि निर्विकारी है अर्थात् अनाहत नाद है। वह केवल प्रसन्नता की प्रदाता है, विधेयक है। किन्हीं दो चीजों के टकराने से नहीं परंतु जो नाद स्वतः उत्पन्न होता है उसे निर्विकारी कहते हैं। दोस्तो! कुछ ध्वनियाँ विघातक होती हैं। ऐसी ध्वनियों से दुःख, दर्द, पीड़ा और कर्कशता का अनुभव होता है। परंतु प्रणव आदि ध्वनियाँ केवल सुख और शांति का अनुभव कराती हैं।

प्यारे साधको!

प्रणवादि ध्वनियाँ प्रमुख तीनों केन्द्रों को संतुलित करने वाली ध्वनियाँ हैं जैसे कि काम केन्द्र, प्रेम केन्द्र और ज्ञान केन्द्र। आप जब ॐकार का उच्चार करेंगे तब यदि सजगता है तो पता चलेगा कि नाभि के इर्द-गिर्द विशेष ऊर्जा प्रवाह बहने लगता है और काम केन्द्र हकारात्मक रूप से सक्रिय होता है। यह ध्वनि उत्तरोत्तर हृदय से ऊपर उठकर हृदय को प्रफुल्लित करती चेतातंत्र में विलीन हो जाती है। इस तरह तीनों केन्द्रों

को संतुलित करती हुई भीतर और बाहर एक वर्तुल सा बनाती हुई अंतरिक्ष में अदृश्य होकर साधक का भी अदृश्य विश्व में प्रवेश करा देती है।

प्यारे साधको!

अब साधना का आरंभ करो। ॐकार अथवा किसी भी विधायक अक्षर अथवा तांत्रिक प्रणव को लेकर पहले ह्रस्व, फिर दीर्घ और फिर प्लुत गति से लंबा उच्चारण करके अंत में विराम लो। इस विराम की अवस्था में ही घटना घटित होती है। इन विराम की क्षणों में ही शिवत्व की अनुभूति है। इस विराम में ही नाद वर्तुल आपको घेरकर ऊर्जा, आनंद और प्रसन्नता से भर देगा। आप बिलकुल हल्के हो जाएंगे, निर्भर हो जाएंगे। फिर केवल ध्वनि आवर्तन बचेगा। आपको लगेगा कि अब आपकी गति आकाश की ओर हो रही है क्योंकि ॐ की ध्वनि नीचे से ऊपर की ओर उठती है और आपकी चेतना को भी ऊपर उठाती है। आपको अनुभव होगा कि आप पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के बाहर आ रहे हैं। फिर पार्थिवता आपको खींच नहीं पाएगी। विषय विकार, वासना अदृश्य होते जाएंगे। आपकी चेतना सूक्ष्म होकर अंतर्मुखी होती जाएगी और आप गहन शांति का अनुभव करेंगे।

दोस्तो! आपकी अनुभूति ही मेरी सफलता बनेगी।



सोहम् मंत्र ध्यान

ध्यान सूक्ति - 183

सोहम मंत्र स्वयं का बोधक, तेहि पर ध्यान आत्म संशोधक॥

ध्यान विधि - 183

सोहं मंत्र से आत्मबोध
प्राप्ति करके अंतर्शुद्धि को
प्राप्त कर लो ।

ॐ गुरु आपके भीतर
कोहम् उठे तभी सोहम् सार्थक
हो पाएगा। दोस्तो! मैं कौन?
इसका जवाब आपके भीतर
प्रति श्वास, चौबीसों घंटो आ
रहा है। वह ध्वनि है -
सोहम्। अर्थात् तू वही है, तू
उससे जुदा नहीं है, उस
विचाट का ही अंश है।

प्यारे साधको!

स्वयं को अल्टिमेट रीयालियटी में लीन करने का मार्ग है – सोहम भाव ध्यान। यह परंपरा वैसे तो शैव धारा में से ही उतरी है। बाद में सिद्ध और नाथों से होकर कबीर मार्गीय शाखा में से एक निजियाधर्म नाम की शाखा हुई जो ओहम्-सोहम् नाम से भी प्रसिद्ध है। बाद में तो इस शाखा की कई शाखा प्रशाखाएं अस्तित्व में आईं। जिनमें से कच्छ, काठियावाड़ और राजस्थान में यह विशेष रूप से प्रचलित है। जिसमें पिराणा परंपरा का भी समावेश होता है। रामदेव पीर, जेसल तोरल, रूपादे मालदे, गंगा सती और पानबाई, भाणसाहेब, खीमसाहेब और रवि साहेब जैसे ज्ञानी भक्त इसी परंपरा में हुए। कुछ लोगों के अनुसार यह छः शब्दों का मंत्र है। इनमें से केवल ओहम्-सोहम् इतना ही प्रसिद्ध है। अन्य चार शब्द उस परंपरा से दीक्षित लोगों को ही दिए जाते हैं। गंगा सती की वाणी के अनुसार इस मंत्र को वचन कहते हैं। परंतु वास्तव में मूल मंत्र “सोहम्” है। जो एक कुदरती ध्वनि है। प्रत्येक मनुष्य में प्रति पल उत्पन्न होती रहती है।

प्यारे साधको!

सोहम् शब्द मूल में संस्कृत शब्द है। जिसका अर्थ होता है – वह मैं हूँ।

वैदिक चिंतन कहता है कि प्रत्येक चेतना वैश्विक चेतना का ही अंश है। जहाँ मैं की हाजरी है वहाँ “तू” की हाजरी अपने आप हो जाती है। जहाँ कुछ दृश्यमान है वहाँ अदृश्य भी मौजूद है। शब्द है तो शून्य भी है। अंश है तो अंशी भी है।

सोहम् मंत्र कहता है कि मैं वही हूँ। वैदिक निरुक्त कहता है कि “सा” ही विष्णु और शिव है। अहम् जब ब्रह्म में खो जाता है तब सोहम् सार्थक होता है।

प्यारे साधको!

बच्चे का जब जन्म होता है तब बच्चे के रोने की आवाज़ कुछ ऐसी ध्वन्यात्मक भासती है – “कोहम”, “कोहम।” अर्थात् मैं कौन हूँ, मैं कौन हूँ।

जन्म के समय बच्चे के लिए विश्व बिल्कुल अपरिचित स्थान होता है। माँ शब्द भी उसके लिए एक शब्द विशेष से ज्यादा कुछ भी नहीं होता। माँ के गर्भाशय से बाहर आकर वह घबराया हुआ, असहाय, और स्वयं को असुरक्षित महसूस करता है। गर्भ के बाहर आने के बाद उसे अपने जीवन की आवश्यकताओं को एक अंजान दुनियां में अपनेआप पूरी करनी होती है। उसके लिए एक ही क्षण में सबकुछ बदल जाता है। उस क्षण में एक नए शरीर के साथ उसका मन भी विकसित होने लगता है। रोने चिल्लाने की भाषा में एक छोटी सी जान अपने प्रश्नों को आपके सामने रखती है। वह जीव रोते हुए पूछता है कि “कोहम”, “कोहम” ?

प्यारे साधको!

यह एक कल्पना मात्र नहीं है। वह बच्चे के रूदन में से प्रगट होती सही ध्वन्यात्मकता है, यह प्रत्येक जीव की वास्तविकता है। देवीभागवत पुराण में एक कथा आती है। जल में वटपत्र पर तैरते हुए छोटे से विष्णु के मन में भी ऐसा प्रश्न उठता है कि मैं कौन हूँ? मैं कहाँ से आया? मैं यहाँ क्यों? तब स्वयं शक्ति प्रगट होकर उसे ज्ञान देकर उसके संशयों का समाधान करती है।

मेरे अनुसार विष्णु एक स्वयं सिद्ध आत्मा है। जन्मजात ऋषि है। कुछ लोग जन्म से ही जागे हुए होते हैं। उनके भीतर जन्म से ही कुछ अस्तित्वगत प्रश्नों का उद्भव होता है और सिद्ध आत्माएं ही उनके प्रश्नों का निराकरण कर सकती हैं। विष्णु के प्रश्न दार्शनिक लगते हैं। परंतु ये दर्शन शास्त्र की बात नहीं है। अनुभूति के स्तर पर भीतर से उठे हुए वास्तविक प्रश्नों की बात है। दोस्तो! मेरी बातों को दर्शन शास्त्र के साथ मत जोड़ना। दर्शन शास्त्र का जन्म तो बहुत बाद में हुआ परंतु पृथ्वी पर कुछ लोगों को आत्मदर्शन तो बिना दर्शन शास्त्र के भी हो सकता है।

मूल बात इतनी ही है कि सोहम् को जानने के लिए कोहम् अनिवार्य है। प्रश्न ही नहीं उठता तो उत्तर की आवश्यकता क्या? संशय ही नहीं उठा तो समाधान की ज़रूरत क्या? मुमुक्षा ही नहीं उठी तो मोक्ष का क्या अर्थ? और बंधन ही नहीं है तो मुक्ति की क्या ज़रूरत?

अगर आपके भीतर कोहम् उठे तभी सोहम् सार्थक हो पाएगा। दोस्तो! मैं कौन? इसका जवाब आपके भीतर प्रति श्वास, चौबीसों घंटों आ रहा है। वह ध्वनि है – सोहम्। अर्थात् तू वही है, तू उससे जुदा नहीं है, उस विराट का ही अंश है।

प्यारे साधको!

सोहम् एक सूक्ष्म ध्वनि है और स्वयं स्फुर्त है। मैं कौन हूँ? इस प्रश्न का जवाब कहीं बाहर से नहीं आता। ऐसे प्रश्न आध्यात्मिक मनुष्य के भीतर से पैदा होते हैं। वैसे तो हर बच्चे के रोने में कोहम् प्रश्न ध्वनित होता है परंतु वह मूर्छित दशा में ध्वनित होता है। वहाँ जीव की कोई सजगता नहीं है। परंतु प्रत्येक के भीतर से उसका जवाब आ रहा है। वह सच्चा और प्रमाणिक है। पूरा अस्तित्व सोहम् सोहम् पुकार कर जवाब दे रहा है। और मनुष्य को उसकी सही पहचान करा रहा है।

प्यारे साधको!

मैं मेरे प्रवचनों में कई बार कहती हूँ कि तेरा सद्गुरु तुझ में। परंतु मनुष्य को बाहर भटकने की आदत हो गई है। मन आदमी को भटकाता है। मैं कौन हूँ? ऐसा प्रश्न उसके मन में कभी नहीं उठता। जिसके मन में ऐसा प्रश्न उठता है, ऐसा मनुष्य मेरी दृष्टि से साधारण मनुष्य नहीं परंतु एक साधक कक्षा का मनुष्य है।

दोस्तो! हम भाषा में भले प्रयोग करें कि मन में ऐसा हुआ, मन में वैसा हुआ। मनुष्य के मन में और सबकुछ होता रहता है परंतु “मैं कौन हूँ?” यह प्रश्न मन में से नहीं आता है। ऐसा प्रश्न तो प्राणों में से उपजता है। चैतन्य जगत से प्रगट होता है। मन तो विचारों की निपज है। अगर आपने मन को पूछ लिया कि मैं कौन हूँ? अथवा मन को जवाब मिल गया कि “तू वही है”, तो फिर वहाँ सारी भागदौड़ पर पूर्णविराम लग जाएगा। मन को विलीन हो जाना पड़ेगा। परंतु दोस्तो! मन सत्य में विलीन होना नहीं चाहता। वह तो नए नए प्रश्न खड़े करना चाहता है। एक बार वास्तविक प्रश्न का वास्तविक जवाब मिल जाने से सारे प्रश्नों

का समाधान हो जाता है। सारहीन बातें खत्म हो जाती हैं और साधक विराम की अवस्था को प्राप्त कर लेता है। परंतु मनुष्य का मन बहुत चालाक है। वह उलटे सीधे अनेक सवाल उठाता रहता है, प्रश्न खड़े करता रहता है परंतु खुद से बारे में प्रश्न नहीं उठाता। अगर मन खुद के बारे में प्रश्न उठाता कि तू कौन है? तो भीतर से जवाब आता कि वास्तव में तू कुछ है ही नहीं, तेरा अस्तित्व है ही नहीं। तू कल्पना मात्र है। तू विचारों का जाल है और इस जवाब के साथ ही मन को मिट जाना पड़ता। इसलिए मन ऐसे प्रश्न में पड़ता ही नहीं है। क्योंकि वह मिटना नहीं चाहता है। उसे शांत नहीं होना है। वो तो अशांतियाँ खड़ी करता रहता है। परंतु कभी कभी अशांति से थका हुआ अंतरमन प्रश्न कर बैठता है कि आखिर मैं कौन हूँ? दोस्तो! यहाँ से अध्यात्म का आरंभ होता है। “कोहम्” का उठना मुक्ति मार्ग की ओर मुड़ने जैसा है और सोहम् की अनुभूति मुक्ति का साक्षात्कार है। कुछ दार्शनिकों की दृष्टि से प्रतिश्वास हंस, हंस शब्द की व्युत्पत्ति हो रही है। यहाँ हंस शब्द आत्मा का प्रतीक है। जो शुद्ध, बुद्ध, चिरंतन है और मृत्यु के बाद उड़कर कहाँ जाता है? वह श्वास, वह प्राण, वह पंछी, वह आत्मा कुछ भी कह लो; वह शरीर के बाहर निकलने के बाद कहाँ जाता है, इसका किसीको भी पता नहीं चलता।

मध्यकाल के संतों की वाणी में संतों ने

हंसा चलो

हंसा गया बिदेस

हंसा उड़ गया रे भाई

ऐसी भावयुक्त कई पंक्तियाँ मिलती हैं। मूल में हंस शब्द वेद से उतरा है। चौदहवीं सदी में सायणाचार्य ने हंस शब्द पर अपना अभिप्राय विस्तार से प्रगट किया है। ऐसे तो असंख्य संदर्भ मिलते हैं परंतु संदर्भों से काम नहीं चलेगा। मैं अनुभूति में मानती हूँ। मैं नहीं चाहती हूँ कि मनुष्य मनुष्य कम और पंडित ज्यादा बन जाए। पांडित चर्चा, विचारणा, विवेचना, विवरण और वाद कर सकते हैं परंतु साधारण मनुष्य अगर समग्रता से ध्यान में उतर जाए तो पंडितों की पांडित्यपूर्ण बातों की अनुभूति करके हर शास्त्र से ऊपर उठ सकता है। कुछ विद्वानों ने सोहम् मंत्र को क्रियायोग में समाविष्ट किया है। उसे अजपाजाप मंत्र भी कहा गया है। अजपाजाप का अर्थ है जिसे जपना नहीं पड़ता। जो अपनेआप चलता रहता है। इसलिए इसे कुदरती मंत्र कहा है।

दोस्तो! इसे गायत्री, हंस गायत्री, हंस मंत्र, प्राण मंत्र, श्री श्री पराप्रसादमंत्र और परमात्म मंत्र आदि नामों से जाना जाता है।

प्यारे साधको!

उपरोक्त नामों में से आप कोई भी नाम सुनो तो आपको अपरिचित न लगे अथवा आप किसी उलझन में न पड़ जाओ इसलिए सोहम् मंत्र के सारे पर्याय दे रही हूँ। वास्तव में यह इडा, पिंगला और सुषुम्णा नाड़ी में प्राणन क्रिया के दौरान उत्पन्न होता है। एक सहज शब्द संचालन है। दोस्तो! सा तथा “अहम्” संधि से सोहम् शब्द बनता है।

अब इसे टेकनिकली समझते हैं। “सो” ... ध्वनि स्वास लेते वक्त भीतर ही भीतर उच्चरित होती है। जिस शब्द की अनुभूति बाहर से भी हो सकती है। “हम्” शब्द ध्वनि उच्छ्वास के समय (श्वास छोड़ते समय) उत्पन्न होती है। इस तरह इस शब्द का उत्पन्न होना एक स्वयं

संचालन है इसीलिए इसे सनातन मंत्र माना गया है। यह मंत्र किसी व्यक्ति विशेष के आयास प्रायास के द्वारा उत्पन्न नहीं हुआ परंतु श्वसन तंत्र की एक कुदरती ध्वनि है। श्वसन कार्य के कारण इडा और पिंगला में होती यह एक आंतरिक ध्वनि है।

मैं कहती हूँ कि मानव शरीर एक वाद्य है। शरीर में पूर्ण रूप से संगीत भरा है। इसमें गीत भी है वादन भी है और नृत्य भी है परंतु मनुष्य उसके प्रति लक्ष्य नहीं दे रहा है। देह के भीतर के संगीत के प्रति लक्ष्य स्थिर करने को ही मैं ध्यान कहूँगी। अगर आपने ऐसा करना सीख लिया तो फिर मन के लिए कुछ खास करना नहीं पड़ेगा। मन अपनेआप वहाँ स्थिर हो जाएगा। यह मनोलय की घटना ही समाधि है।

प्यारे साधको!

श्वास आपके शरीर और मन के बीच का सेतु है। इस सेतु के बिना मन और शरीर दोनों निष्क्रिय हो जाते हैं। अर्थात् यह सेतु ही मन और देह के अस्तित्व का आधार है। परंतु आप जब जब ध्यान में स्थिर होने का प्रयास करते हो तब मन विपरीत क्रिया में लग जाता है। यह मन का स्वभाव है। आप जैसे जैसे स्थिर होने का प्रयास करते हो वैसे वैसे मन ज्यादा से ज्यादा विक्षेप करके चिंता पैदा करता है। ऐसी स्थिति में मनुष्य का पूरा चेतातंत्र थका हुआ शरीर और कोलाहल करता हुआ मन के बीच में विक्षिप्त होता रहता है। ऐसी स्थिति में आपकी पूरी नर्व सिस्टम को संतुलित करने के लिए तथा शरीर और मन को शांत करने के लिए तीनों को श्वसन क्रिया के प्रति मोड़ देना यह एक श्रेष्ठ विकल्प है। यह रहस्य लाखों वर्ष पहले भारत के योगी जान गए थे। यही राज़ फिर विविध रूप से विविध संप्रदायों ने जाना। तब किसी ने उसे विपश्यना

कहा, किसीने श्वसन ध्यान कहा, किसीने सोहम् ध्यान कहा। शिव से लेकर बुद्ध और बुद्ध से लेकर आजतक यही प्रक्रिया विविध नामों से विविध संप्रदाय और देशों में आजमाई जाती है परंतु उसका उद्देश्य तो एक ही है।

प्यारे साधको!

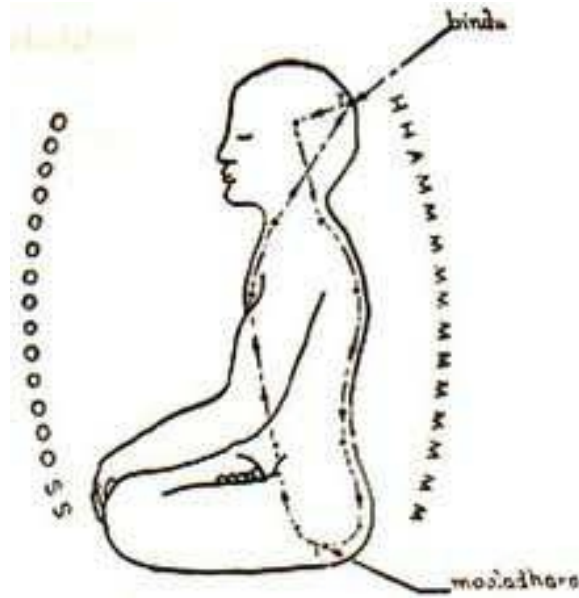
श्वास के विज्ञान को संस्कृत में स्वरोदय भी कहते हैं। अंग्रेजी चिंतक स्वर का अर्थ करते हैं – रिपल ऑफ साउन्ड; और स्वरोदय का अर्थ है – स्वर समुद्र। शरीर रूपी समुद्र में श्वास की स्वर रूपी तरंगें लगातार उठती रहती हैं।

दोस्तो! योगी अपने शरीर का वाद्ययंत्र की तरह उपयोग करता है। उसमें से उठते स्वरों में चित्त को लीन करके स्वरों के सोहम्, सोहम् भाव में डूबता रहता है। अर्थात् मैं वह हूँ, मैं वह हूँ, मैं वह हूँ.... इस तरह के स्वर तरंगों के साथ योगी का मनोलय होकर आनंद का महासागर सदैव उछलता रहता है। लेकिन याद रहे कि स्थूल शब्दों को नहीं पकड़ना है। उसकी ध्वन्यात्मकता में प्रवेश करना है।

प्यारे साधको!

मैंने इस ग्रंथ की भूमिका में मंत्र योग के सोलह अंग बताए हैं। मंत्र योग के अथवा मंत्र ध्यान के आरंभ के पहले उन सभी अंगों का स्मरण करना है। परंतु जरूरी नहीं कि सबकुछ आपसे हो पाए। मैं कहूँगी कि अगर उन सभी अंगों का निर्वाह आप नहीं कर पाएंगे और अपराधभाव पैदा होगा और आप ध्यान से बेध्यान हो जाएंगे। इसलिए एक बात के प्रति विशेष सजग रहें और वह है – मंत्र में तल्लीनता। केवल एक तल्लीनता को साध लेंगे तो अन्य सभी बातें स्वतः सध सकती हैं।

दोस्तो! अब यह मत पूछना कि कितनी देर तक और कितने दिन तक इस ध्यान को करें? हर मनुष्य के पास अलग अलग मन होता है। प्रत्येक की आवश्यकता अलग अलग होती है। प्रत्येक की समझ अलग अलग होती है। अहंकार भी अलग अलग प्रकार के होते हैं। आपको इस विधि में केवल अंतरध्वनि पर चेतना को स्थिर करना है। जपने के लिए तो कुछ है ही नहीं। यह स्वयं अजपा जाप है। तो जपेंगे क्या? जो कुदरती संगीत बज रहा है उसके साथ आपको केवल एकरूप होना है। धीरे धीरे एकलीनता की वजह से मन अदृश्य होता जाएगा और आप ध्यान को उपलब्ध हो जाएंगे। मैं तो कहूंगी कि चौबीसो घंटे यह घटना आपमें सजगता से घटनी चाहिए। हो पाएगा आपसे?





शिवोहम् मंत्र ध्यान

ध्यान सूक्ति - 184

मंत्र शिवोहम् ध्यान से जपहिं, साधक सहसा शिव रूप बनहिं।।

ध्यान विधि - 184

शिवोहं के जाप में ध्यानस्थ
होकर शिवरूप का
अनुभव कर लो ।

मन के द्वारा पकड़ी हुई पुरानी धारणाओं को पहले मिटाना पड़ता है। इसके लिए उसके प्रति अपनी शक्ति को पूरी तरह मोड़नी पड़ती है। चेतना के स्तर पर जब कोई प्रयास अथवा पुरुषार्थ शुरू हो जाता है तब मन धीरे धीरे क्षीण होने लगता है और सहयोग भी करने लगता है। क्योंकि मन का भी कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं है। वह एक विचार जाल है। जन्म जन्मांतर की वासनाओं का खंडहर है। मन का काम है मान लेना। उसे सत्य से कुछ लेना देना नहीं है। मान्यता ही उसकी रूपाक है। वह मान्यताओं में जीता है। मान्यताओं से बड़ा होता जाता है। मान्यताओं में बांधता है और मान्यताओं से बंधता है। दोस्तो! मान्यताएं स्वप्न कर देने से वह स्वप्न हो जाता है। मन का मिट जाना ही मुक्ति है। मन का अस्तित्व बंधन। मन का अस्वीकार है ज्ञान।

प्यारे साधको!

वैसे तो शिवोहम् और सोहम् में खास फेर नहीं है परंतु जो फर्क है वह केवल धारणा का, विज्ञान का और मनोविज्ञान का है। दोनों विधियों में तत्त्व पर ही मन को लीन करना है। परंतु शिवोहं सोहम् की भांति नेचयुरल साउन्ड नहीं है परंतु आचार्य शंकर द्वारा दी हुई एक दिव्य धारणा है; जो असंख्य मनुष्य के चित्त को रूपांतरित करने में सफल रही है और इसी वजह से शिवोहं शब्द मंत्र की श्रेणी में आ गया। मंत्र का एक अर्थ है, रहस्य। मंत्र मनुष्य मन के साथ रहस्यपूर्णता से काम करता है। वह क्या करता है? रूपांतरण कैसे घटता है? उसका मनुष्य को भी पता नहीं चलता और मनुष्य बदल जाता है।

दोस्तो! इस मंत्र दाता का उदय ई.स. ७८८ में दक्षिण के कालडी गाव में हुआ था। पृथ्वी पर कुछ ऊर्जाएं धर्मक्रांति के लिए और विशेष आध्यात्मिक अभियान चलाने के लिए ही आती हैं और अपना कार्य करके चली जाती हैं। ऐसे लोग अपनी ऊर्जा को अन्य कार्यों में व्यय नहीं होने देते। ऐसे ही एक ऊर्जावित पुरुष का नाम है आद्य शंकराचार्य। जिसने

विशिष्टाद्वैत अर्थात् यह परमात्मा विशिष्ट रूप से हमसे अभिन्न है। इस बात का प्रचार प्रसार किया और पूरे भारत में शिवोहं मंत्र की लहर फैल गई। जिसका प्रभाव आजतक देखा जाता है।

दोस्तो! समय के साथ जब ऐसे ऊर्जावान पुरुष पृथ्वी पर से विदा ले लेते हैं तब उसकी विचारधारा एक संप्रदाय में परिवर्तित हो जाती है। आदि काल से पृथ्वी के लिए यह एक करुणा की बात है। परंतु मनुष्य की एक कमजोरी है कि वह परंपरा को पकड़ लेता है और सत्य को चूक जाता है। अगर वह परंपरा के मूल में जो सत्य बसा हुआ होता है, उसे पकड़कर विकसित हो जाए तो कल्याण आसान बन जाता है। उन सत्यों में ध्यान और समाधि को सहज उपलब्ध होने के रास्ते छिपे हुए होते हैं। आचार्य शंकर एक अनुभव सिद्ध दार्शनिक उपरांत गोविंदपाद जैसे गुरु के शिष्य थे। उपरांत विद्यार्जन के लिए काशी जैसे क्षेत्र में बस चुके थे। उसका एक ही ध्येय था कि मनुष्य अपने शिवत्व को पहचाने। अद्वैतवाद को जीवंत रखने के लिए उन्होंने भारत के उत्तर में ज्योतिर्मठ, पश्चिम के द्वारिका में शारदा पठ, दक्षिण में श्रृंगेरी मठ और पूर्व के जगन्नाथपुरी में गोवर्धन मठ की स्थापना की।

आचार्य शंकर का एक असाधारण व्यक्तित्व था। उनके देहविलेह के बारे में मतभेद है। परंतु बहुमत के अनुसार सिर्फ ३२ वर्ष की आयु में इ.स. ८२० में केदारक्षेत्र में उनकी जीवनलीला समाप्त हो गई। इस युवा आचार्य ने कितना पुरुषार्थ किया होगा मनुष्य को जगाने के लिए! वे कितने उत्सुक होंगे मनुष्य को शिवतत्त्व की अनुभूति कराने के लिए। आचार्य शंकर के शिवोहं भाव में वास्तविक ब्राह्मणत्व झलक उठता है। वेद भी कहते हैं कि जो ब्रह्म का अनुभव कर लेता है वही सच्चा ब्राह्मण

है। देह, मन, बुद्धि, विद्या, ज्ञान और धर्म आदि ब्राह्मण नहीं हैं। उपनिषद् के मतानुसार ब्रह्म तत्त्व की अनुभूति ही ब्राह्मणत्व में प्रवेश है। आचार्य शंकर अद्वैतवादी आचार्य के उपरांत एक श्रेष्ठ साहित्य सर्जक भी थे। उनका साहित्य अष्टादश रत्न नाम से प्रसिद्ध है। जो छंद वैविध्य, काव्यलालित्य, सौन्दर्यबोध आदि साहित्यिक अंगों से परिपूर्ण है। अलंकृत भाषा में भी सरल अभिव्यक्ति है। यह शंकर की सृजन की विशिष्टता है। शंकर रचित स्तोत्रों में से “आत्मषटक” और “बोध दशक”, जो छः और दस श्लोकों में रचा गया है, वह अद्भुत है। भारत के मानस पर इन स्तोत्रों का इतना गहरा असर पड़ा है कि काव्य का ध्रुव पद –शिवोहं– ने मनुष्य के हृदय में मंत्र का स्थान प्राप्त कर लिया है। आज भी वेदांती सन्यासियों के सम्मेलनों के आरंभ में पहले समूह में शिवोहं मंत्रोच्चार होता है। आचार्य शंकर चाहते थे कि उनकी आध्यात्मिक अनुभूति समष्टिगत बने और पूरी मनुष्यता उसका लाभ उठाए। अपने आध्यात्मिक पुरुषार्थ में वे काफी हद तक सफल रहे। आचार्य शंकर को प्रच्छन्न बुद्ध माना गया था। कुछ सिद्धांतों की बात करें तो लोग कहते हैं कि बुद्ध की ही विचारधारा को शंकर ने अपने शब्दों में आगे बढ़ाया। दोनों का चिंतन समान लगता है। खैर!

मुझे यहाँ बुद्ध और शंकर की तुलना नहीं करनी है। मैं शंकर के शिवोहं मंत्र के बारे में बात करना चाहती हूँ, उसके प्रभाव के बारे में बात करना चाहती हूँ। बड़ी बड़ी सभाओं को जीतने में मैं शंकर की सिद्धि नहीं मानती हूँ। परंतु साधारण जन तक उसका शिवोहं मंत्र पहुंच गया और उनके द्वारा रचित स्तोत्रों ने लोक हृदय में स्थान ले लिया और उसके साथ साथ वे साधारण जन के हृदय में भी शिवोहं भाव जगा सके ये शंकर की

सबसे बड़ी सफलता है। यहाँ शंकर मानव मन को रूपांतरित करने के लिए धारणा देता है कि तू शिव है।

प्यारे साधको!

मन ने बहुत सारी चीजों को पकड़ रखा है। जिनमें से ज्यादा चीजें सूक्ष्म हैं और कुछ स्थूल। जब आप अपने मन को धारण देते हैं कि तू अ, ब, क है तब मन प्रश्न करेगा कि आज तक तो मैं कुछ और था और अब अचानक आदेश दिया जा रहा है कि तू कुछ और है, तो आज तक जो मैं था अथवा मैंने मेरे बारे में जो मान रखा है उसे कैसे भूलूं?

दोस्तो! मन के द्वारा पकड़ी हुई पुरानी धारणाओं को पहले मिटाना पड़ता है। इसके लिए उसके प्रति अपनी शक्ति को पूरी तरह मोड़नी पड़ती है। चेतना के स्तर पर जब कोई प्रयास अथवा पुरुषार्थ शुरू हो जाता है तब मन धीरे धीरे क्षीण होने लगता है और सहायग भी करने लगता है। क्योंकि मन का भी कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं है। वह एक विचार जाल है। जन्म जन्मांतर की वासनाओं का खंडहर है। मन का काम है मान लेना। उसे सत्य से कुछ लेना देना नहीं है। मान्यता ही उसकी खुराक है। वह मान्यताओं में जीता है। मान्यताओं से बड़ा होता जाता है। मान्यताओं में बांधता है और मान्यताओं से बंधता है। दोस्तो! मान्यताएं खत्म कर देने से वह खत्म हो जाता है। मन का मिट जाना ही मुक्ति है। मन का अस्तित्व बंधन। मन का अस्वीकार है ज्ञान।

प्यारे साधको!

आपका मन ऐसी अनेक बातों को पकड़कर बैठा है कि जिसमें से कुछ भी वास्तविक नहीं है। आप उन अवास्तविकताओं को अपना स्वरूप

मान बैठे हो। आचार्य शंकर ने मिथ्या का खंडन करके सत्य के मंडन का आरंभ किया है। ऐसा ही करना पड़ता है। जब खंडहर को नींव के साथ नहीं हटाया जाता तब तक उस भूमि पर कुछ नए का निर्माण कैसे हो पाएगा? आचार्य शंकर मन ने डाली हुई झूठी और पुरानी नींवों को हटाकर सबकुछ शून्य कर देना चाहते हैं। केवल शून्य। मनुष्य में – न कुछ – का बोध जगाने के लिए उनके सारे प्रयास करते रहे परंतु उस समय में ब्राह्मणवाद का इतना जोर था कि लोग शून्य की भाषा नहीं समझ सकते थे। बुद्ध ने भी शून्य हो जाने की ही बात की थी। परंतु बुद्ध की विचार धारा को ज्यादा से ज्यादा किसीने नुकसान पहुंचाया है तो ब्राह्मणवाद ने। उस वक्त के लोकमानस के अनुसार शिव को समझना लोगों के लिए आसान था। आज भी ब्राह्मण शिव को इष्ट देव के रूप में पूजते हैं। आचार्य शंकर लोकमानस के अनुसार शिव को केन्द्र में रखते हुए भी एक अर्थ में शून्य की धारणा ही दे रहे हैं।

दोस्तो! परमात्म तत्त्व आखिर क्या है? वह सबकुछ होने पर भी कुछ नहीं है। मनुष्य जब नाकुछ होने की कला जान लेता है तब परम शांति और आनंद का अनुभव कर सकता है।

आचार्य शंकर ने मनुष्य की खुद के बारे में और मनुष्यता के बारे में अर्थात् जाति-पाति, रंग-रूप, आदि विषय में भी धारणा बनाए रखी है। उन सभी धारणाओं का खंडन करके आत्मषट्क स्तोत्र के प्रत्येक श्लोक के अंत में कहा कि मैं केवल शिव हूँ, शिव हूँ। स्वयं कल्याण हूँ। यह भाव मनुष्य को अध्यात्म के विश्व में प्रवेश करने के लिए विशेष रूप से मदद कर सकता है। शिव के प्रति लोकमानस में जो आस्था थी उसका उपयोग करके शंकर ने शिवोहं की धारणा दे दी। उसने कहा कि प्रत्येक

मनुष्य परमात्मा बनने के लिए पृथ्वी पर आया है। भगवदता से कम उसे कुछ भी मंजूर नहीं था।

दोस्तो! एक अर्थ में यह एक तंत्र प्रयोग ही था। मेरे अनुभव के अनुसार पूरा तंत्र शास्त्र मनोविज्ञान से भरपूर है। यहाँ मन का विरोध नहीं करना है। परंतु उसका सहयोग लेकर, उसका उपयोग करके गलत धारणाओं के पार जाकर सत्य को प्राप्त कर लेना है। आचार्य शंकर मन से ही प्रारंभ करते हैं और कहते हैं कि मैं मन नहीं हूँ, न बुद्धि हूँ, न अहंकार हूँ, न दस इन्द्रियाँ हूँ, न पंचमहाभूत, मैं तो केवल सजगता और आनंद स्वरूप शिव हूँ।

आचार्य शंकर देह के प्रत्येक तत्वों का खंडन करते करते आगे बढ़ते हैं। शरीर रचना के उस पार चले जाते हैं। रंग और रूप के बारे में मन की एक एक धारणाओं को तोड़ते हुए मनुष्य को तत्व के बारे में सोचने को प्रेरित करते हैं। दोस्तो! मन को तो आदत है। उसकी एक लत छुड़ाओगे तो वह दूसरी पकड़ लेगा। वह कोई ज्ञान की अवस्था में नहीं होता। मन सदैव बोलता रहता है। उसे शांत करने के लिए या तो बहुत बोलना पड़ता है जिसे लोग सत्संग कहते हैं अथवा उसे ध्यान में ले जाना पड़ता है। शंकर ने आत्मषटक के छः श्लोको में और अन्य दस श्लोको में सारी पार्थिवता का खंडन करते हुए अनेक बार कहा कि मैं शिव हूँ, मैं शिव हूँ।

दोस्तो! शंकर तो उस अवस्था तक पहुंच चुके थे कि उसके लिए शिवोहं एक अनुभूति बन गया था। उसे बार बार बोलने की कोई जरूरत नहीं थी। ज्ञानियों के लिए तो इशारा भी काफी होता है। परंतु अज्ञानी मन पूछता जाता है कि मैं कौन हूँ? मैं कौन हूँ? उसे एक जवाब देंगे तो वह

दूसरा प्रश्न उठाएगा। इसलिए शंकर मानव मन को एक भी मौका नहीं देना चाहते। वे मन के द्वारा ही मन का अस्तित्व मिटाना चाहते हैं और वह भी मन की स्वीकृति के साथ। स्वीकृति के लिए शंकर मानव मन को कदम कदम पर तैयार कर रहे हैं। शंकर की यह एक अद्भुत शैली है। मन कुछ नई बातों को न पकड़ ले इसलिए शंकर स्थूल का पूरा पूरा अस्तित्व ही मिटा देते हैं। वे कहते हैं कि न मैं पंचप्राण हूँ, न पंचवायु, न तो मैं रस रक्त, मांस, मेद, अस्थि आदि सप्त धातु हूँ, न तो अन्नमय, मनोमय, प्राणमय, विज्ञानमय, या आनंदमय कोष हूँ। ना ही मैं शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध आदि तन्मात्रा हूँ परंतु मैं तो सजग, आनंद रूप केवल शिव हूँ।

मैं राग-द्वेष, लोभ, मोह, मद, और मात्सर्य जैसे द्वंदों से पर हूँ और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि पुरुषार्थों से भी पर हूँ। इतना ही नहीं परंतु पाप पुण्य, सुख-दुःख आदि से भी मुक्त हूँ। मंत्र, तंत्र, वेद, यज्ञादि, ज्ञानकर्म और भोजन तथा भोक्ता जैसे स्थूल कर्म से भी पर हूँ। मुझे न मृत्यु का भय है न जाति-पाति का भेद। मेरे अजन्मा होने से न मेरे माता पिता हैं न ही बंधु आदि का रिश्ता। न किसी से मेरा मैत्री का नाता है और गुरु तथा शिष्य का भी मुझे बंधन नहीं।

प्यारे साधको!

अब मन को न कहीं चिटकने का ठिकाना रहा और न बचने का कोई चारा। सारे मैं मर गए। फिर अस्तित्व से एक प्रमाणिक प्रश्न उठता है। कि तो तू कौन है? शंकर कहते हैं कि मैं तो संकल्प विकल्प से पर निराकार रूप सर्वव्यापी समर्थ प्रभु, इन्द्रियों का स्वामी और प्रत्येक बंधनों से मुक्त सर्वोत्तम और सम्यक व पूर्ण आत्मस्वरूप सजग, आनंद शिव हूँ।

प्यारे साधको!

अगर समझ लो तो “शिवोहं” एक श्रेष्ठ महामंत्र है। न मानो तो केवल एक कविता का शब्द। भारत के ज्यादातर शास्त्र काव्य बनकर रह गए हैं। मैं नहीं चाहूँगी कि शिवोहं शब्द से आप किसी स्तोत्र को रट लो। रटना नहीं है, रूपांतरित होना है। दोस्तो! यह मंत्र कैसे करें? कब करें? इस भावना के साथ कितनी देर के लिए ध्यान में बैठें? ऐसे प्रश्न नहीं करने हैं। आप श्वसते रहते हैं। श्वास के बारे में आपने कभी किसी से प्रश्न किया है कि कितनी देर श्वास लूँ? लगातार लेते जा रहे हो क्योंकि वह आपके जीवन का एक सत्य है। उसपर प्राण निर्भर है। वैसे ही शिवोहं भी आपके जीवन का एक परम सत्य है। समाधान प्रश्नों में नहीं खोज में है, अनुभव में है।



वाहे गुरु मंत्र ध्यान

ध्यान सूक्ति - 185

वाहे गुरु मंत्र से साधो, गुरु आराधी मोक्ष को लाधो॥

ध्यान विधि - 185

वाहे गुरु मंत्र से गुरु का
ध्यान करके सहज ही
मुक्ति को प्राप्त कर लो ।

जि न धर्मों में आज
अयोग्य व्यक्ति गादीपति गुरू
बन बैठे हैं, जहाँ शिष्यों का
शोषण हो रहा है, धर्म का
धंधा हो रहा है और धर्म सत्ता
प्राप्त करने के लिए ज्ञान की
जगह गोलियाँ चल रही हैं
ऐसे धर्म के अनुयायियों को
सिक्ख धर्म से कुछ प्रेरणा
लेनी चाहिए।

प्यारे साधको!

सिक्ख धर्म पृथ्वी के अनेक धर्मों में से एक विरल धर्म है। यह धर्म मुझे इसलिए पसंद है इस धर्म ने व्यक्तिगत त्याग, संसार त्याग, दुःख, पीड़ा या उदासीनता नहीं सिखाई परंतु एक बहादुर प्रजाति तैयार करने के लिए पूरा पूरा समर्पण सिखाया है। गुरु नानक के द्वारा इस धर्म की स्थापना हुई। नानक एक मस्त फकीर विधेयक स्वभाव के बहादुर फिर भी सरल चित्त संत थे।

दोस्तो! सिक्ख धर्म को हम बहादुरी का धर्म कह सकते हैं। छोड़ो। मुझे यहाँ सिक्ख धर्म के बारे में विशेष बातें नहीं करनी हैं। मुझे तो सिक्ख गुरु मंत्र के बारे में कुछ बताना है। सिक्ख गुरु मंत्र है “वाहे गुरु।” सिक्ख धर्म में बताया गया है कि इस मंत्र को गुप्त अथवा वाचिक रूप से अथवा माला के साथ अथवा माला के बिना भी जप सकते हैं। परम सत्य पर ध्यानस्थ होने के लिए इस मंत्र का जाप किया जा सकता है।

दोस्तो! इस मंत्र को “नाम” शब्द से पुकारा जाता है। वैष्णव मार्गी कृष्ण भक्ति शाखा और राम भक्ति शाखा की तरह सिक्ख धर्म में भी नाम जप की बहुत बड़ी महिमा है। इसका कारण है।

जब आप किसी एक ही शब्द का पुनरावर्तन करते रहते हैं तब मन उससे ऊब जाता है, थक जाता है, मन अदृश्य होने लगता है क्योंकि मन चंचल है, उसका स्वभाव है क्षणक्षण में बदलना, वह अपने रंगरूप बदलने के लिए नए नए विषयों पर सोचता रहता है। परंतु आप जब एक ही विषय में आपकी समग्र शक्ति को लगा देते हैं तो मन को विषय नहीं मिलता। थका हुआ मन धीरे धीरे अदृश्य होने लगता है। परंतु ऐसी स्थिति में एक खतरा भी है। मन के विविध रंग, रूप और विषयों की जिन्हें आदत लग गई हो ऐसे शरीर और इन्द्रियाँ जो मन के कारण व्यस्त रहते हैं वे भी थक जाते हैं। ऐसी स्थिति में मन और शरीर के बीच में थकान एक कड़ी बन जाती है और निद्रा की स्थिति पैदा होती है।

अगर आप मंत्र जाप करते करते सो जाते हैं तो फिर वह आपके लिए मंत्र नहीं रहता; एक नींद का साधन बन जाता है। ऐसा मंत्र ध्यान नहीं बन सकता, साधना नहीं बन सकता। फिर तो वह नींद की गोली की तरह हो जाता है और इस तरह से जपा हुआ जाप एक यज्ञ नहीं परंतु मनोकसरत बन जाता है।

याद रहे! आप मंत्र को ध्यान बनाने के लिए मंत्र में लीन हो रहे हो। नींद में जाने के लिए मंत्र नहीं जप रहे हो। ध्यान जागने का विषय है, ऊबने का नहीं। अगर ध्यान की बातों से अथवा उसकी चर्चा से आप ऊब रहे हो तो समझ लो कि आप ध्यान के लिए है ही नहीं।

खैर! अकसर बूढ़े लोग, बीमार लोग और अनिद्रा के शिकार बने लोग मंत्र जप का उपयोग ट्रांक्विलाईज़र की तरह करते हैं। माला गिनते गिनते उनके हाथ थक जाते हैं और मंत्र रटते रटते मस्तिष्क। शरीर और मस्तिष्क के थकने से हाथ से माला छूट जाती है और आदमी उनिंदा महसूस करने लगता है। चेतन मन संकल्प विकल्प करता हुआ कब अजाग्रति में चला गया उसका पता तक नहीं चलता और आदमी सो जाता है। मंत्र तो बेचारा कहाँ छूट गया उसका पता ही नहीं? ऐसी स्थिति में मंत्र में न भाव होता है, न ही मंत्र जाप ध्यान बन सकता है। बेचारा अबोध मनुष्य ऐसी स्थिति में भी मंत्र जाप का भ्रम पालता रहता है। परंतु मूल में उसे न ध्यान करना है, न जाप। उसे थकना है, उसे सोना है। इसलिए वह मंत्र का इस तरह से ही उपयोग करना चाहता है।

दोस्तो! ऐसा करना यह मूढ़ता है। ऐसे लोगों को धोखेबाज़ कहना चाहिए। यह तो एक प्रकार का भ्रम है। ऐसे दंभीओं के मंत्र जाप से माहौल में न कोई हकारात्मक ऊर्जा फैलती है न कोई विशेष फायदा। ऐसे लोग थकने के लिए मंत्र बोले या मंत्र के स्थान पर और किसी भी शब्द को बकते रहे कोई फर्क नहीं पड़ता।

वेद व्यास ने गीता में कहा है कि यज्ञ में जप यज्ञ भगवान का स्वरूप है। लोग कहेंगे कि यह वाक्य तो कृष्ण ने कहा है। मैं कहती हूँ कि वेद व्यास ने कहा है। क्योंकि महाभारत व्यासकृत है। महाभारत के युद्ध पर्व में कृष्ण के माध्यम से वेदव्यास ने मनुष्य को बंधन से मुक्ति तक की गाथा बताई है। विषाद से महासुख का उपाय विविध योग के रूप में बताया। “अर्जुन विषाद योग” से लेकर “मोक्ष संन्यास योग” के सातसो

श्लोक ही महाभारत का सार हैं। इसकी समझ के सिवाय पूरा जीवन कुरुक्षेत्र का युद्ध मात्र है।

प्यारे साधको!

जप यज्ञ को परमात्मा क्यों कहा है? क्योंकि परमात्मा नित्य आनंद स्वरूप और सत्य रूप है। आनंद और सत्य कभी खोता नहीं, कभी सोता नहीं। परमात्मा भी प्रतिपल जागते हैं। जीव सो जाता है। ईश्वर तो सर्वसाक्षी है। जो सोता है उसे जागना पड़ता है। परंतु जो शुद्ध चैतन्य है और सदा जागा हुआ है वहाँ मूर्छा कैसी? मैं कहूँगी कि जहाँ मंत्र रहे परंतु ऊबना न रहे, जहाँ मंत्र में अखंडितता रहे परंतु माला की जरूरत न रहे, जहाँ तल्लीनता रहे परंतु निद्रा न रहे वही है; सच्चा नाम जप, वही है सही मंत्रजाप, वही है जप यज्ञ और वही है मंत्रध्यान। सजगता के साथ किसी अज्ञात को जपते जपते उसके साथ तार जुड़ जाता है और आप खो जाते हो तब वह ध्यान बन जाता है। दोस्तो! मैं आपको ऐसी अवस्था में देखना चाहती हूँ।

अब आईए “वाहेगुरू” मंत्र की ओर। सबसे पहले वाहेगुरू शब्द का अर्थ समझ लीजिए। भाई गुरुदास ने इस मंत्र को साचू मंत्र, गुरू सबद, जप मंत्र और गुरूमंत्र आदि विविध नामों से गाया है। सिक्ख धर्म के तीन प्रमुख सिद्धांतों में से एक है नाम जप।

सिक्ख धर्म की खालसा शाखा की स्थापना गुरू गोविन्द सिंह जी के द्वारा १६९९ में की गई तब से “वाहीगुरू” सिक्ख सेल्युटेशन का एक भाग रहा है। “वाहेगुरूजी का खालसा” और “वाहेगुरू जी की फतेह”। ये दो धर्म वाक्य सिक्खों के बीच में कई बार सुनने मिलते हैं। खालसा का अर्थ है – ईश्वरीय अनुशासन और फतेह का अर्थ है ईश्वरीय विजय।

दोस्तो! जहाँ ईश्वरीय अनुशासन होता है वहाँ दिव्य विजय का होना स्वाभाविक है।

सिक्ख धर्म अपने आप में पूर्ण और प्रमाणिक धर्म है। वह पलायन नहीं परंतु संकट समय में सीना तान कर मुकाबला करना सिखाता है। यह धर्म भीरुता नहीं परंतु वीरता का उपासक है। सिक्ख धर्म की परंपरा में गुरु नानक के बाद नौ गुरु हुए। जैसे कि गुरु अंगददेव, गुरु अमरदास, गुरु रामदास, गुरु अरजनदेव, गुरु हरगोविन्द, गुरु हरराय, गुरु हरकृष्णा, गुरु तेगबहादुर और गुरु गोविन्द सिंहजी। इन नौ गुरुओं के बाद किसी व्यक्ति को गुरु के स्थान पर न बिठाकर गुरु ग्रंथ साहेब को शब्द ब्रह्म गुरु के रूप में प्रस्थापित कर दिये।

ज्ञानी पुरुषो और प्रबुद्ध पुरुषों की वाणी का गुरु ग्रंथ साहेब में समावेश किया गया और एक ऐसे शाश्वत गुरु की स्थापना कर दी गुरु गादी पर। यह निर्णय एक अपूर्व और अद्भुत निर्णय था। दोस्तो! व्यक्ति अप्रमाणिक बन सकता है, धोखा कर सकता है, झूठ बोल सकता है, शोषण कर सकता है, उससे गलती हो सकती है, वह विचलित और पतित भी हो सकता है परंतु शब्द ब्रह्म में ऐसी कोई संभावना नहीं है। आगम साहित्य को जब भी पढ़ो वे बगीचे की तरोताजा फूलों की तरह पावन और सुवासित लगते हैं। सिक्खों ने यह काम सबसे ज्यादा समझदारी का किया।

मैं कहूंगी कि आज सिक्खों की गुरुगादी पर एक नहीं परंतु ब्रह्म वाणी के रूप में एक साथ अनेक गुरु बिराजित हैं। वहाँ नानक भी हैं, फरीद भी है, कबीर भी है, नामदेव भी है और रविदास भी है। इसका अर्थ यह हुआ कि सिक्ख धर्म किसी एक व्यक्ति में नहीं परंतु सबके सत्यों में

आस्था करता है। कितना बड़ा स्वीकार! कैसी अपूर्व उदारता? आज तक कोई धर्म ऐसा नहीं कर पाया। दोस्तो! गादी का मोह छोड़ना यह कोई साधारण बात नहीं है। सिक्खों ने ग्रंथ को ही साहिब माना। यहाँ साहिब का अर्थ है सर्वोपरि ईश्वर। सिक्खों के अनुसार अनुभूति पूर्ण ज्ञानी आत्माओं की वाणी है सच्चा गुरु है। उस वाणी से ही ईश्वरीय अनुभूतियाँ होती हैं और वह वाणी ही मोक्ष मार्ग के लिए प्रेरित करती है और शक्ति भी देती है।

जिन धर्मों में आज अयोग्य व्यक्ति गादीपति गुरु बन बैठे हैं, जहाँ शिष्यों का शोषण हो रहा है, धर्म का धंधा हो रहा है और धर्म सत्ता प्राप्त करने के लिए ज्ञान की जगह गोलियाँ चल रही हैं ऐसे धर्म के अनुयायियों को सिक्ख धर्म से कुछ प्रेरणा लेनी चाहिए।

प्यारे साधको!

हम बात कर रहे हैं वाहेगुरु मंत्र की। यह शब्द बड़ा ही प्यारा है। सिक्ख धर्म की उदार नीति ने ग्रंथ साहिब को विशेष संपन्न बनाया है। सिक्ख उपरांत कई बोली और भाषा के सबद अर्थात् भजनों को, सवैयाँ को और दोहों को उसमें समाविष्ट किया गया है। इससे यह धर्म किसी धर्म विशेष या पंथ अथवा किसी धर्म की शाखा नहीं परंतु सर्वग्राह्य बना है। गुरुद्वारे में हिन्दु मुसलमान या ब्राह्मण शूद्र का भेद नहीं है। यह उदार नीति ही इस धर्म की उन्नति का प्रमाण है।

सिक्ख धर्म में वाहेगुरु और वाहीगुरु ये दो उच्चार मिलते हैं। दोनों परमात्मा के विशेषण हैं। उसका अर्थ है – परमसृष्टा की जय हो।

पंजाबी अर्थ में वाहेगुरू का अर्थ है – अद्भुत गुरू परमात्मा। एक खोज के अनुसार गुरू ग्रंथ साहिब में वाहेगुरू अट्ठारह स्थानों में मिलता है उपरांत उस परब्रह्म के लिए ॐकार सतनाम, राम, रहमान, पुरुषः, अल्लाह, खुदा, आदि शब्दों के प्रयोग से सिक्ख परंपरा की उदार चित्त का परिचय मिलता है।

प्यारे साधको!

वाहे अथवा वाही शब्द फारसी भाषा से लिया गया है और गुरू शब्द संस्कृत से। गुरू का अर्थ है – विराट, समर्थ, या महान और वाही का अर्थ है – अद्भुत।

उपनिषद् की भाषा में कहें तो

यतो वाचो निवर्तते..... – जहाँ वाणी कुछ कहने को सक्षम नहीं रहती ऐसी बातों को हम अद्भुत कहते हैं। वह परमात्मा अद्भुत है, वाणी से परे है, अवर्णनीय है। उसका अनुभव गूंगे के गुड़ जैसा है। वाही का अर्थ कुछ लोग जयजय कार भी करते हैं। अर्थात् उस उद्भुत ईश्वर की जय हो।

प्यारे साधको!

विविध मंत्रों को लेकर मैं इतना विस्तार क्यों करती हूँ? संभव है कि आपके घर में भले किसी भी धर्म परंपरा का पालन हो रहा हो परंतु आप एक मुक्त चित्तवान मनुष्य हो सकते हो। इस संभावना पर सोचकर मैं इतना विस्तार कर रही हूँ। आपका आत्यंतिक ध्येय अगर ध्यान है तो मंत्र कोई भी हो क्या फर्क पड़ता है? आपकी पूर्ण आस्था अगर किसी खास मंत्र के साथ जुड़ी हो तो बात अलग है। परंतु अगर आपका चित्त

कुंवारा है तो आप मेरे द्वारा वर्णित किए हुए किसी भी मंत्र में से आपके पसंदीदा मंत्र पर ध्यान कर सकते हो।

ध्यान के लिए जरूरी नहीं कि आप सिक्ख घर में या ब्राह्मण घर में या शैव अथवा शाक्त घर में जन्म लो। ध्यान तो एक स्वतंत्र विषय तथा मार्ग है। उसका संबंध किसी भी धर्म संप्रदाय से नहीं फिर भी वह परम धार्मिक है। विश्व का कोई भी धर्म और संप्रदाय ध्यान के विपक्ष में नहीं है। ध्यान एक अर्थ में सभी धर्मों के पार है और दूसरे अर्थ में वह स्वयं में ही एक परम धर्म है।

मैं कहती हूँ कि ध्यान के लिए धर्म परंपराओं की जंजीर में पड़ने की जरूरत नहीं है। आप भले वैष्णव परिवार में पैदा हुए हो परंतु आपको वाहेगुरु मंत्र जम जाता है या जंच जाता है तो उसमें खो जाना। जो मंत्र आपके दिल को छू जाए, आपको रोमांचित कर दे, आपको प्रफुल्लित कर दे ऐसे किसी भी मंत्र को बना लेना ध्यान का आधार।

दोस्तो! कितना प्यारा मंत्र है वाहेगुरु! परब्रह्म परमात्मा से बड़ा गुरु कौन हो सकता है? सभी गुरु आखिर तो गोविंद का मिलाप कराने के लिए तो हैं! परमात्मा वास्तव में अद्भुत है। दोस्तो! खुली दृष्टि से कभी देखा है इस सृष्टि को! कितनी अद्भुतता से भरी है वह कदम कदम पर! जहाँ आदमी अवाक् हो जाता है। वह परमात्मा बादल में पानी भर देता है। सागर में नमक मिला सकता है। पानी में आग लगा सकता है ये सारी बातें हमारे बस के बाहर की हैं। तभी तो सिक्ख गुरुओं ने समर्पण कर दिया और उस परम गुरु की जयजयकार कर दी। वे उस अद्भुतता के चरणों में झुक गए।

प्यारे साधको!

अगर ऐसे परमात्मा की अद्भुतता आपको अभीभूत कर रही है। वास्तव में आप एक जीवंत व्यक्ति हैं तो वाहेगुरु मंत्र के द्वारा उस परम परमात्मा के ध्यान में लग जाओ। वाहे गुरु मंत्र भले एक सिक्ख मंत्र लगे परंतु वास्तव में यह एक सनातन सत्य है। सत्य की उपासना में कैसा संकोच!





गायत्री मंत्र ध्यान

ध्यान सूक्ति - 186

गायत्री में स्थिर करी ध्याना, पाओ परम पद ज्ञान विज्ञाना।।

ध्यान विधि - 186

गायत्री मंत्र में चित्त को
स्थिर करके ज्ञान-विज्ञान
के अनुभव से परम पद
को प्राप्त कर लो ।

गायत्री सूर्य मंत्र है। सूर्य की
उपासना है। वह सूर्य ध्यान ही है।
परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि वहाँ
साक्षात् सूर्य गौण हो जाए। इसका
अर्थ सिर्फ इतना ही करना है कि ऐसे
मंत्र जिसका वृक्ष, सूर्य, नदी या पृथ्वी
से संबंध है - वे सब आपमें उन
तत्वों की महिमा का बोध जगाते रहते
हैं और आपको प्रशिक्षित करते रहते
हैं कि प्रकृति का उपभोग भले करो,
परंतु सजग रहो कि उसका दुरुपयोग
न हो, नाश न हो। प्रकृति आपके
लिए उदात्त है तो आप भी प्रकृति के
लिए उदात्त रहो और उसके प्रति
धन्यवाद के भाव से पूर्ण बनो।

प्यारे साधको!

गायत्री मंत्र की श्रेष्ठता के बारे में कहा गया है कि सभी शास्त्रों में से मीमांसा शास्त्र श्रेष्ठ है और उससे तर्क शास्त्र और तर्क शास्त्र से पुराण श्रेष्ठ है। पुराण से धर्म शास्त्र श्रेष्ठ है। धर्म शास्त्र से श्रुति और स्मृति श्रेष्ठ है। और इन सबसे गायत्री मंत्र श्रेष्ठ है। दोस्तो पहले गायत्री मंत्र का अर्थ समझ लो।

ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि

धियो योनः प्रचोदयात् ॐ

अर्थात् : ॐ – ये ब्रह्म परमात्मा का आदि नाम है।

भूर् – जो सभी मनुष्यों के प्राण का आधार है।

भुवः – जो भक्तों का सर्व दुःख हर्ता है।

स्वः – जो संपूर्ण जगत को सुख रूप चलाता है।

तत् – वही (भगवान सूर्य देव)

सवितुर् – जगत को उत्पन्न करने वाले तेजस्वी भगवान सूर्यदेव

वरेण्यम् – अत्यंत आनंददायक (श्रेष्ठ)

भर्गो – पापनाशक तेज
देवस्य – देव का
धीमहि – हम ध्यान धरते हैं
धियो – बुद्धि को
योनः – जो हमारी
प्रचोदयात – प्रेरणा करे।

भावार्थ : ॐ, जो सभी प्राणियों का जीवन है। जो उसके प्रत्येक भक्त के सभी दुःखों का निवारण करने वाला है। और जो समग्र जगत् को उत्पन्न करनेवाला तथा चलाने वाला है। उस भगवान् सूर्यनारायण के अत्यंत आनंददायक तेज-प्रकाश पर हम ध्यान करते हैं ऐसे भगवान् सवितादेव हमारी बुद्धि को प्रेरणा प्रदान करो।

मैं कहती हूँ कि प्रत्येक मंत्र श्रेष्ठ है परंतु श्रेष्ठ तब है जब उसकी श्रेष्ठता का मनुष्य को लाभ मिले। उसके श्रेष्ठत्व को समझा जाए उसके विज्ञान को और ज्ञान को समझा जाए। उसकी महिमा को समझा जाए।

ध्यान : एक नई दिशा नाम के ध्यान ग्रंथ भाग-१ में मैंने सबसे पहले सूर्योदय ध्यान लिया है। उसका सीधा संबंध गायत्री से है। परंतु वहाँ मैंने गायत्री मंत्र का जिक्र नहीं किया है। क्योंकि तब मैं कुदरत के सानिध्य में जो ध्यान करने थे, उस संदर्भ में कुछ प्रेक्टिकल बातें करना चाहती थी और साथ साथ यह भी बताना चाहती थी कि कुदरत के साथ तदात्म्य साधने में किसी धर्म, संप्रदाय, मंत्र या पूजा-पाठ की आवश्यकता नहीं है। प्रकृति के साथ घुल मिल जाना स्वयं एक पूजा है, ध्यान है। इसलिए मौका पाने पर भी मैंने सूर्य मंत्र की बात नहीं छोड़ी थी। प्रकृति का प्यारा रूप जब आपको चारों ओर से घेर लेता है तब आप उसका अंश

बन जाते हो। चाहने पर भी आप आपका अस्तित्व उससे अलग नहीं रख सकते। वैसे तो प्रकृति से दूर होकर भी इस विराट अस्तित्व का अंश बने रहते हो। परंतु प्रकृति के प्रगाढ सानिध्य में उससे एकरूपता का अनुभव होता है। जब आप उसमें समा जाते हो और उससे भिन्न नहीं रहता तब कौन बचेगा पूजा करने वाला? कौन जपेगा जाप? कौन पढ़ेगा पाठ? कौन रटेगा मंत्र? मेरा अनुभव है कि प्रकृति के साथ एकरूप हो जाने के बाद ऐसी कुछ संभावना ही नहीं बचती।

जब सूर्य के साथ आप सूर्य रूप बन गए, वृक्ष के साथ वृक्ष, पुष्प के साथ पुष्प तथा वर्षा के साथ जलरूप बन गए तो फिर मंत्र से क्या? मैं कहती हूँ कि प्रकृति मंत्र से कोई कम नहीं। कभी कभी तो उससे भी विशेष जीवंत लगती है। मेरे अनुसार तो पहले प्रकृति का आविर्भाव हुआ फिर मंत्रों का। खैर छोड़ो! जब मंत्रों की बात निकली तो गायत्री मंत्र पर चर्चा करने को जी चाहा। दोस्तो! गायत्री सूर्य मंत्र है। सूर्य की उपासना है। वह सूर्य ध्यान ही है। परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि वहाँ साक्षात् सूर्य गौण हो जाए। इसका अर्थ सिर्फ इतना ही करना है कि ऐसे मंत्र जिसका वृक्ष, सूर्य, नदी या पृथ्वी से संबंध है – वे सब आपमें उन तत्वों की महिमा का बोध जगाते रहते हैं और आपको प्रशिक्षित करते रहते हैं कि प्रकृति का उपभोग भले करो, परंतु सजग रहो कि उसका दुरुपयोग न हो, नाश न हो। प्रकृति आपके लिए उदार है तो आप भी प्रकृति के लिए उदार रहो और उसके प्रति धन्यवाद के भाव से पूर्ण बनो।

आज घने शहरीकरण के कारण सूर्य और आकाश छोटा होता जा रहा है। सूर्य का दर्शन दुर्लभ होता जा रहा है। फिर भी आदमी सूर्य मंत्र गायत्री जपता जाता है। सूर्य की कल्पना करके उसका ध्यान करना और

सूर्य के प्रत्यक्ष साक्षात्कार करके उसकी किरणों में मंत्र ध्यान द्वारा विलीन होते रहना; इन दोनों बातों में बहुत फर्क है।

मैंने ऐसे कई लोग देखे हैं कि जो सुबह में जल्दी उठ जाते हैं और अन्य सोए हुए सदस्यों को विक्षेप भी खूब पहुंचाते हैं। ऐसे लोग मंत्र जपते नहीं परंतु बड़बड़ाते हैं। दोस्तो! मैं कहती हूँ कि जितनी जागने की महिमा है उतनी ही नींद की महिमा है। और नींद की महिमा है इसीलिए रात्रि की महिमा है। विपरीतता का सिद्धांत एक सनातन सिद्धांत है। विपरीत के बिना सृष्टि की उत्पत्ति और अस्तित्व संभव नहीं। जितनी शब्द की महिमा है उतनी ही मौन की भी है। त्याग की महिमा है तो भोग की भी है। परंतु कुछ लोगों की सोच कुंठित होती है। ऐसे लोगों का सुबह में जल्दी उठ जाना अनिद्रा का प्रभाव अथवा आदत होता है। दुनियां की नजरों से ऐसे लोग निवृत्त हो चुके हैं। घर के और लोग उनमें खास रस नहीं लेते। ऐसे लोग पूजा पाठ अथवा अनुभव के नाम पर कुछ न कुछ ऐसी हरकतें करते रहते हैं कि लोगों का ध्यान उनकी ओर खिंचता रहे। अगर कोई बच्चा ऐसा करता है तो वह बच्चा कहलाता है। परंतु जब बड़े लोग ऐसी हरकतों से बाज नहीं आते तब वे मूढ़ कहलाते हैं। ऐसे लोगों से अन्य लोग दूर रहने की कोशिश करते हैं। ऐसे लोग धार्मिक होने की या दिखने की लाख कोशिश करे तो भी घर में उनकी उपेक्षा होती है। क्यों? क्योंकि सही धार्मिक मनुष्य कभी स्वकेन्द्री नहीं हो सकता। सच्चा धार्मिक मनुष्य कभी किसी की शांति का भंग नहीं करता। कभी असत में नहीं जीता। कभी दंभ नहीं कर सकता। न ही कभी माहौल को कालाहल से भर सकता है।

प्यारे साधको!

कुछ मंत्र ज्यादा लंबे होते हैं। जैसे कि गायत्री मंत्र। नासमझ लोग जब सुबह में जल्दी उठकर चिल्ला चिल्लाकर बोलने लगते हैं तब ऐसे लगता है कि उसका हेतु मंत्र जाप का नहीं है परंतु सोए हुए लोगों को जगाना है। ऐसी हरकतों से नई पीढ़ी चिढ़ती है। उन्हें लगता है कि बूढ़े लोग हमें दिखा रहे हैं कि वे बड़े धार्मिक हैं और हम अधार्मिक। वे पुण्यवान हैं और हम पापी। फिर धर्म की बातों को लेकर नई पीढ़ी के मन में कुछ ग्रंथियाँ ज़ोर पकड़ लेती हैं और वे लोग मंत्र आदि को धार्मिक फोर्मालिटी समझने लगते हैं तथा मंत्रादि से विमुख हो जाते हैं। नई पीढ़ी के लिए यह एक बहुत बड़ा खतरा और आध्यात्मिक नुकसान है। इसलिए बुजुर्गों को अपना प्रातःकर्म पूजा-पाठ-मंत्र आदि ऐसी शालीनता से करना चाहिए कि बच्चों की और युवानों की धर्म कार्यों में उत्सुकता और जिज्ञासा बढ़े। फिर उन्हें वैज्ञानिक और आध्यात्मिक ढंग से हमारी धर्म परंपरा को समझाया जाए तो उनके मन का माहौल बदल सकता है। धर्म मज़ाक न बनकर या एक ऊबाऊ कर्मकांड न बनकर मनुष्य जीवन का अनिवार्य और सहज स्वीकृत अंग बन सकता है। परंतु उसकी जिम्मेदारी बड़ों पर है। विश्व का बुजुर्ग समाज अगर बोधपूर्ण हो तो आध्यात्मिक विश्व में चमत्कार घट सकता है। वयोवृद्ध लोग मौन रहकर अपना बड़प्पन सिद्ध करें तो बच्चों का उत्तम आश्रय बन जाए और युवकों में धर्म जिज्ञासा भी बढ़े। परंतु आज के समाज में मंत्रों के नाम से वैखरी वाणी वदी जाती है, विक्षेप खड़ा किया जाता है। ऐसी स्थिति में नवयूवकों की आस्था मंत्र के प्रति कैसे बढ़ेगी?

दोस्तो! गायत्री मंत्र का मूल संदेश है कि हम सूर्य का ध्यान कर रहे हैं, वह सूर्य देव हमारी रक्षा करे और हमारी बुद्धि को सत्कार्य में प्रेरित करे। परंतु ज्यादातर गायत्री मंत्र लोगों को इसके अर्थ का पता ही नहीं होता। वह केवल मंत्र बड़बड़ाते रहते हैं। न ही ध्यान में उतरते हैं, न सदबुद्धि के लिए सूर्य से कोई प्रेरणा याचते हैं। ऐसे मूर्खों के मंत्र रटने से तो बच्चों का अनर्गल बोलना, हंसना और खेलना ज्यादा सुंदर और निर्दोष लगता है।

प्यारे साधको!

मंत्र एक विज्ञान है। विज्ञान का अर्थ है विशिष्ट ज्ञान। मंत्र के द्वारा मनुष्य में अगर विशिष्ट ज्ञान का उदय नहीं हुआ तो मंत्र का अर्थ क्या? गायत्री मंत्र के बारे में कहा गया है कि उसे गाने वाले को वह तार देता है। दोस्तो! जिसके ज्ञान का उदय होता है उसका तैर जाना स्वाभाविक है।

एक और बात। पूर्वी परंपरा में गायत्री मंत्र का अधिकार केवल ब्राह्मणों को ही दिया गया था। परंतु मैं कहती हूँ कि गायत्री मंत्र ध्यान में वह क्षमता है कि इसी जन्म में वह मनुष्य का पुनर्जन्म करा सके। इस ध्यान से द्विजत्व की प्राप्ति हो जाती है। द्विज का अर्थ है जिसका दूसरी बार जन्म हुआ। दोस्तो! मंत्र ध्यान के कारण मनुष्य जाग जाता है। उसके भीतर की शक्तियाँ जाग उठती हैं। ऊर्जा का व्यय रुक जाता है। क्योंकि वह मानवी कमज़ोरियों से ऊपर उठ जाता है। यह क्षण ही रूपांतरण के हैं और यह अवस्था ही ब्राह्मणत्व की है।

ध्यान आपको बदल देता है। ध्यान से शूद्रत्व खो जाता है और ब्रह्मत्व का आविर्भाव होता है। इसी वजह से मैं कहती हूँ कि ध्यान में उतरो। ध्यान के लिए लोगों को प्रेरित करो। ध्यान का प्रचार प्रसार करो।
प्यारे साधको!

गायत्री मंत्र स्वयं एक विज्ञान है। यह वैदिक मंत्र है। इसके प्रत्येक अक्षरों के देवों का देवीभागवत में उल्लेख मिलता है। साधारण मनुष्य को ये सब बातें विचित्र लगती हैं। वैसी भी विज्ञान प्रवाह सभी विद्यार्थियों के लिए नहीं होता।

अग्नि, प्रजापति, चंद्र, इशान, सविता, आदित्य, ब्रह्मस्पति, मैत्रावरुण, भग, अर्यमा, गणेश, त्वष्टा, पूषा, इन्द्राग्नि, वायु, वामदेव, मित्रवरुण, विश्वदेवा, मात्रुका, विष्णु, वसु, रुद्र, कुबेर और अश्विनीकुमार ये चौबीस देव गायत्री मंत्र के चौबीस अक्षरों के देवता माने गए हैं। संभव है कि इन चौबीसों ने मिलकर दिव्य परिणाम को देना वाले इस सिद्ध मंत्र को प्रगट किया हो। जिसका उद्देश्य मनुष्य उपरांत उत्तम योनियों के सभी जीवों के कल्याण का हो।

वामदेव, अत्रि, वशिष्ठ, शुक्र, कण्व, पराशर, विश्वामित्र, कपिल, शौनक, याज्ञवल्क्य, भरद्वाज, जमदग्नि, गौतम, मुद्गम, वेदव्यास, लोमश, अगस्त्य, कौशिक, वत्स, पुलस्त्य, मांडूक्य, दुर्वासा, नारद और कश्यप आदि ने इस मंत्र ध्यान को सिद्ध किया था।

प्यारे साधको!

गायत्री मंत्र संगीतपूर्ण है। अच्छे अच्छे विद्वान और छंद शास्त्र के ज्ञाताओं को भी कभी कभी पता नहीं होता कि यह मंत्र कितने छंदों से

भरपूर है। गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप, ब्रह्मति, पंक्ति, त्रिष्टुप, जगति, अदिजगति, शक्वरी, अतिशक्वरी, ध्रुति, अतिध्रुति, विराटप्रस्ता, कृति, प्रकृति, आकृति, विकृति, संस्कृति, अक्षरपंक्ति, भुः, भुवः, स्वः, और ज्योतिष्मति ये छंद हैं।

गायत्री मंत्र की शक्ति को संध्या, गायत्री, सावित्री, सरस्वती, ब्राह्मी, वैष्णवी, रौद्रा, रक्ता, श्वेता और कृष्णा आदि उपमाओं से सराहा गया है।

सूर्य शक्ति गायत्री को सुबह में बालिका, मध्याह्न में युवती और सांयकाल में वृद्ध माता भगवती के रूप में सिद्ध पुरुष उपासना करते हैं।

गायत्री शक्ति ऋग्वेदाध्यायनी है। अलंकृत भाषा के साथ पृथ्वी पर तपस्वीओं के द्वारा उपासित गायत्री शक्ति में ब्राह्मी, सावित्री और सरस्वती का दर्शन करके तीनों को क्रमशः हंसारूढा, ऋषभवाहिनी और गुरुड़ारूढा कहके प्रार्था गया है। इस संदर्भ में देवीभागवत का एक श्लोक अत्यंत रोचक और सूचक है—

यजुर्वेदम् पठन्ति च अंतरिक्षे विराजते

सा सामगाति सर्वेषु भ्राम्यमाणा तथा भुवी

(१२, ५, ६ देवीभागवत पुराण)

वह गायत्री शक्ति सरस्वती रूप में यजुर्वेद पढ़ती अंतरिक्ष में विराजमान है। और सावित्री रूप में सामवेद गाती हुई पृथ्वी पर सर्व जीवों में रमती है।

प्यारे साधको!

अब आप ही कहिए कि उस शक्ति को हमसे अलग कैसा माना जाए! अगर वह हर जीव में व्याप्त है तो ब्रह्म और शूद्र के अधिकार का

भेद कैसे करें? सूर्य की यह प्रकाश और अग्नि रूप शक्ति हमारे रोम रोम में रम रही है। गायत्री को किसी अन्य लोक की देवी मानकर भिन्न रूप से अथवा उसका मंदिर बनाकर उपासने से तो यह देहमंदिर में ही उसका स्पष्ट दर्शन करके उसकी नित्य उपासना करने में समझदारी है। परंतु लोगों को कैसे समझाएं? उन्हें मंदिर, पूजा, पर्दा, पुजारी और तालों की आदत पड़ गई है।

शास्त्रों ने गायत्री के सहस्र नाम दिए हैं। सहस्र का अर्थ है असंख्य। हमारे मनीषियों ने ऐसा इसलिए किया कि उस सूर्य की शक्ति के असंख्य रूप हैं। असंख्य रूप में वह आपके भीतर और बाहर रम रही है। उसके बिना सृष्टि का अस्तित्व नहीं। उसके कारण ही यह सृष्टि इतनी सुंदर, उपजाऊ और ऊर्जापूर्ण है।

दोस्तो! ऐसे सूर्य की उपासना कर लो। ध्यानस्थ हो जाओ उसके प्रकाश में, अपने अंतर को धन्यवाद से भर लो और स्वयं को उसका अंश समझकर उसमें विलीन होना सीखो।

दोस्तो! आज गायत्री के नाम पर मनुष्य ने कुछ उल्टा ही कर दिया है। पांच मुख और दस भुजा वाली देवी की कल्पना करके संगेमरमर की मूर्ति बनाकर पूजा पाठ शुरू कर दिया। इसमें भी कुछ गलत नहीं परंतु उसके अर्थ और रहस्य को समझे बिना सबकुछ बचपना है।

प्यारे साधको!

इस सूर्य शक्तिमंत्र का नाम गायत्री क्यों पड़ा? क्योंकि तीनों लोकों में यह मंत्र गाया जाता है। ऐसा क्यों? क्योंकि सूर्य के बिना ब्रह्मांड की कल्पना नहीं हो सकती। ब्रह्मांड में जीने वाले जीवों के लिए प्रकाश और अग्नि अनिवार्य है। दोस्तो! पांच मुख और दस भुजा वाली गायत्री

माता की मूर्ति एक आध्यात्मिक प्रतीक है। उस प्रतीकात्मकता को नहीं समझता वह केवल अंगन्यास और बाहरी आचारों पर शाब्दिक जप करके अटक जाता है। देवीभागवत स्पष्ट कहता है कि मनुष्य न्यासादि भले न करे परंतु निर्व्याज भक्ति से वह सच्चिदानन्द रूपिणी भगवति शक्ति का ध्यान करके गायत्री का अभ्यास करे। (१२/१/८)

परंतु आदमी की एक कमजोरी कहो या विचित्रता। उसे जो समझना होता है वही समझता है और जो करना होता है वही करता है। सुनना सबकी करना मनकी – यह सूत्र किसी सनकी या जिद्दी दिमाग वाले आदमी ने दिया होगा। ये कोई नासमझ आदमी के दिमाग की उपज है। जो मन की ही सुनता है और मन की ही मानता है। किसी शालीन चित्त की नहीं। ऐसी मनमानी करने वाले और धर्म को केवल कर्मकांड बना देने वाले लोगों के लिए हजार हरेश्वरी भी कुछ नहीं कर सकतीं। क्योंकि वे लोग सबको सुनने के लिए ही पैदा हुए हैं, बदलने के लिए नहीं या सत्य को समझने के लिए नहीं।

प्यारे साधको!

अब पांच मुख और दस भुजा युक्त सूर्य देवी गायत्री के प्रतीक को समझो। पांच मुख पंचकोष का प्रतीक है। वे द्वार बंधन और मुक्ति दोनों दे सकते हैं। उस पंचकोष के रहस्य को जान लेता है उसका परम पद में प्रवेश हो जाता है।

दोस्तो! दस भुजाएँ दस महाविद्याओं का प्रतीक हैं। जो मनुष्य दस महाविद्या को प्राप्त कर लेता है वह जन्म और मृत्यु के पार जाने में समर्थ हो जाता है। यही तंत्र शास्त्र का सार और रहस्य है। तैत्तिरेय उपनिषद् में एक छोटा सा दृष्टांत है। जिसमें आनंदमय कोष की महिमा गाई है। पूरा

विश्व आनंद की खोज में है। और योग, तंत्र तथा समस्त विश्व के समस्त धर्म मनुष्य के सुखाकारी और प्रसन्नता के पक्ष में ही हैं। तैत्तिरेय उपनिषद् में भृगु वल्ली में भृगु ब्रह्म ज्ञान के लिए पिता वरुण को विनीत भाव से कहता है कि हे भगवन! मुझे ब्रह्म ज्ञान की शिक्षा दीजिए। तब वरुण कहते हैं कि जिससे समस्त जीव उत्पन्न होते हैं फिर जीवित रहते हैं और उसमें ही विलीन होते हैं ऐसे ब्रह्म की इच्छा कर और उस ब्रह्म को तप के द्वारा जाना जाया जा सकता है। भृगु ने कठोर तप किया परंतु पिता ने बार बार तप में ही लगा दिया। पांच बार तपानुभूति के बाद भृगु आनंदमयी विभूति को प्राप्त हो गया और अंत में भृगु ने जाना कि आनंद ही ब्रह्म है।

प्यारे साधको!

मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य अन्नमय, मनोमय, प्राणमय, विज्ञानमय और अंत में जब आनंदमय कोष में विलीन हो जाता है तब मैं कहूंगी कि उसकी पंचानना गायत्री की उपासना सफल हो गई।

प्यारे साधको!

गायत्री शक्ति के बारे में स्वयं शिव ने पार्वती से संवाद किया है। जो गायत्री मंजरी नाम से प्रसिद्ध है। यह बोध छयालीस श्लोको में है। जिनमें से मुझे श्लोक ३२, ३४, ३५ और ४६ अत्यंत छू गए। शिव कहते हैं कि जो मनुष्य गायत्री की दस भुजाओं का महत्व जानता है वह शूल और महाशूल के भय को नहीं पाता। दोषयुक्त दृष्टि, परावलंबन, भय, शुद्रता, असावधानी, स्वार्थपरता, अविवेक, क्रोध, आलस्य और तृष्णा ये दस शूल हैं। और दस भुजारूपी दस महाविद्या के गुणों से इन दस शूलों का संहार करना है। अंत में कहते हैं कि

गुप्तम् मुक्तम् रहस्यम् यत पार्वती त्वां पतिवृताम्
प्राप्यन्ति परमाम् सिद्धिम् ज्ञासमन्त्ये तत् तू ये जनाः

हे परम पतिव्रता पार्वती! मैंने जो यह गुप्त रहस्य कहा है इसे जो लोग जानेंगे वे परम सिद्धि को प्राप्त होंगे।

प्यारे साधको!

परमानंद से बड़ी सिद्धि क्या हो सकती है? बुद्ध कहते हैं कि दुःख का उपाय है और दुःख मुक्त स्थिति है। मैं कहती हूँ कि समझ के साथ किया हुआ गायत्री का ध्यान दुःख का उपाय भी है और दुःखमुक्त स्थिति की उपलब्धि भी यदि उसे रटना है तो रोम रोम से रटो और उसमें खो जाओ।



अल्लाहू मंत्र ध्यान

ध्यान सूक्ति - 187

अल्लाहू अल्लाहू ध्याओ, साधक ईश्वर रूप हो जाओ॥

ध्यान विधि - 187

अल्लाहु अल्लाहु जपते
जपते ध्यानमग्न होकर
ईश्वर रूप बन जाओ ।

मुस्लमान जब ईद की नमाज़ के लिए जाते हैं, उस दौरान अल्लाहू अल्लाहू बटते रहते हैं। एक दिन में असंख्य बार यह मंत्र दोहराते हैं। परंतु जब अल्लाहू मंत्र ज़हन से उठे तभी सार्थक है। साधे जप तप जीवन में क्रियात्मक नहीं परंतु कितने भावात्मक रूप से होते हैं यह बात महत्वपूर्ण है। मैं तो कहती हूँ कि उस अल्लाह से इतने निकट हो जाओ कि मक्का मदीना का अनुभव अपने भीतर ही होने लगे। काबा और तूर का दीदार अपने भीतर ही हो जाए।

प्यारे साधको!

अल्लाहू इस्लाम के प्रेममार्गी संतों की शाखा का एक मंत्र है। जिन्हें कुछ लोग सूफी परंपरा भी कहते हैं। अल्लाहू शब्द अरबी भाषा से उतरा है। अरबी भाषा में -अल्ला- शब्द का अर्थ है ईश्वर और -हू- उस पवित्र शब्द के बाद जुड़ता एक परंपरागत शब्द है। जिसे आप ईश्वर का वाच्य, विशेषण, ईश्वर का छोटा सा नाम अथवा इस्लामिक प्रणव भी कह सकते हैं। इस्लाम के मस्त फकीर अल्लाहू अल्लाहू पुकारते रहते हैं, इस मंत्र को गाते रहते हैं। कव्वाली आदि में भी प्रचीन समय से इस मंत्र का प्रयोग होता है।

प्यारे साधको!

ईश्वर ने पृथ्वी बनाई, रास्ते मनुष्य ने बनाए। ईश्वर ने मनुष्य बनाए और जाति-पांति के भेद मनुष्य ने। ईश्वर ने ध्वनि उत्पन्न की-भाषा मनुष्य ने बनाई। ईश्वर ने वृक्ष बनाए, मनुष्य ने फर्नीचर। ईश्वर ने अणु अणु की रचना की तो मनुष्य ने उसमें से अणु बॉम्ब को बनाया।

मनुष्य ईश्वर की संतान है तो स्वाभाविक है कि पिता का स्वभाव पुत्र में आएगा। ईश्वर सृजनशील है तो मनुष्य भी सृजनशील रहेगा। फर्क इतना है कि कुछ पुत्र पिता की आज्ञा में रहकर काम करते हैं तो कुछ पुत्र स्वतंत्र रूप से तो कुछ पुत्र विरोध में जाकर।

दोस्तो! मनुष्यता के पक्ष में, जीवन के पक्ष में, शांति और आनंद के पक्ष में रहकर जो कुछ भी काम करता है, उसे शास्त्र ईश्वर के आध्यात्मिक पुत्र, भक्त, प्यारे पुत्र, अथवा वेद सम्मत जीवन जीने वाला मानते हैं। जो अपनी मर्जी से कुछ भी करता रहता है उसे ईश्वरीय अनुशासन के बाहर का समझते हैं और जो मनुष्यता के लिए हानिकारक कार्यों को करता है, जो विघटनात्मक प्रवृत्ति करता है अथवा पृथ्वी के जीवों को असलामती का अनुभव हो ऐसा करता है तो उसे आसुरी दानवी या राक्षसी प्रकृति वाले कहते हैं। मानव सृष्टि जैसे जैसे आगे बढ़ती गई वैसे वैसे उसमें असंख्य परिवर्तन आते गए।

प्यारे साधको!

समग्र मानव सृष्टि एक साथ उत्पन्न नहीं हुई है। कुछ लोग किसी एक दिशा में विकसित हुए तो कुछ जातियाँ दूसरे किसी टापू पर। कुछ लोग नदी तट पर बसे तो कुछ समंदर के किनारे। कुछ लोग जंगलों में बसे तो कुछ पहाड़ों में। कुछ लोग हरे भरे प्रांतों में जन्मे तो कुछ मरुस्थल में कि जहाँ जीवन लक्ष्मी सुविधाएं बड़ी कठिनाई से उपलब्ध होती थीं। अपनी अस्तित्व टिकाने के लिए वे लोग पुरुषार्थ करते रहते थे। आज भी करते हैं। किसीने आसानी से सुख सुविधाओं को प्राप्त कर लिया तो किसीको जीवन टिकाने के लिए बहुत संघर्ष करना पड़ा। अपनी अपनी जीवन शैली, वातावरण, विचार और आवश्यकताओं के अनुसार उनकी संस्कृति

विकसित हुई। परंतु चार बात सारे मनुष्यों में समान रूप से उतरतीं। भोजन की आवश्यकता, निद्रा की आवश्यकता, भय और काम वासना। इन चारों आवश्यकताओं ने इस संसार चक्र को क्रियांवित रखा है। इसके उपरांत भी एक बात प्रत्येक मनुष्य में ईश्वर ने सूक्ष्म रूप से छिपा रखी है – वह है आस्था, श्रद्धा, भक्ति, प्रेम। जिससे सृष्टि सलामती का अनुभव करती है। ये भावनाएं अलग अलग समय पर अलग अलग रूप से प्रगट होती रहती हैं।

भय और आस्था ये दो बातें ऐसी हैं कि मनुष्य अगर सजग नहीं है तो उसकी आस्था परिशुद्ध न रहकर भय की छाया में पनपती रहे। परंतु ऐसी आस्था सच्ची आस्था नहीं है। सच्ची आस्था तो वह है कि जहाँ मनुष्य स्वयं को हर प्रकार से असहाय महसूस करे तब भीतर के भाव से किसी अंतरिक्ष में बसे हुए से मदद मांगे। प्रथम दृष्टि से यह स्वार्थ लगता है। परंतु खुद के अस्तित्व के लिए जूझना या किसी अज्ञात से मदद मांगना ये स्वार्थ नहीं परंतु धर्म है। इसलिए तो हिन्दुओं में –आत्मरक्षितो धर्म- इस सूत्र को प्रमुख माना गया है। किसी अज्ञात से मिलती मदद अथवा अज्ञात के द्वारा प्राप्त होती सुरक्षा, ईश्वर के द्वारा, अल्लाह के द्वारा या भगवान के द्वारा प्राप्त होती है। ऐसी दृढ़ भावना से मनुष्य हृदय भरा है। फिर अचानक किसी चमत्कार घटने से या अज्ञात से मदद मिल जाने से उसके प्रति मनुष्य ऐसे अहोभाव से पेश आता है कि जैसे हाथी के पैरों में छोटा सा खरगोश उसको रिझाने का प्रयास कर रहा हो। ऐसे प्रयास में से पूजा-प्रार्थना, स्तुति आदि का जन्म होता है। क्योंकि यह सब अज्ञात के द्वारा पाई हुई मदद अथवा रक्षण के लिए धन्यवाद प्रगट करने का मनुष्य का विराट के सामने एक वामन परंतु प्रेमपूर्ण प्रयास है।

स्वाभाविक रूप से जीवन मात्र सुखान्वेषी है। शाश्वत सुख
अथवा आनंद जीव का स्वरूप है। वह ईश्वरीय अंश है।

ईश्वर अंश जीव अविनाशी।

चेतन अमल सहज सुखराशा॥

स्वाभाविक है कि नदी महासागर के प्रति ही गतिशील होगी। इस
प्रकार सहज सुखधाम जीव का परम सुखधाम परमात्मा के प्रति आकृष्ट
होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

आनंद का केन्द्रबिन्दु क्या है? उसकी निरंतर, अबाधित धारा
बहने का साधन कौन है? यह बातें विचारणीय हैं।

श्रुति में लिखा है -

यो वै भूमा तदमृतमय यदल्पं तन्मर्त्यम्॥

अर्थात् पूर्ण में ही सुख है। जो अल्प है वह दुःख और मृत्यु है।
इसलिए सद्अभ्यास और सत्संग से सांसारिक सुखों को त्यागकर महापुरुष
अक्षुण सुख की खोज करते हैं। भगवन्नखमणि चन्द्रिका के प्रकाश में
नित्यानंद का अनुभव करते हैं, यह नित्यानंद का अनुभव ही भक्ति है।

इस भक्ति के विषय में भिन्न भिन्न विद्वानों ने भिन्न भिन्न अर्थ एवं
परिभाषा देने का प्रयत्न किया है। वेदकाल से लेकर आजतक विद्वज्जनों
ने उनके स्वरूप की चर्चा की है परंतु मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि भक्ति के
उद्भव का इतिहास मानव सृष्टि - जीवसृष्टि के जितना ही पुराना है।
अर्थात् जहाँ भी मानव पैदा हुआ वहाँ भाव अनिवार्य रूप से पैदा होता ही
है।

भाव से जीव पर नहीं रह सकता है, साहित्यकारों ने अनेक प्रकार
के भावों का वर्णन किया है, यहाँ अन्य भावों के विवरण में न पड़कर हम

सिर्फ भक्ति भाव की ही बात करें तो भी इतना ही स्पष्ट है कि मानवसृष्टि के साथ साथ ही भावसृष्टि पैदा हुई और अन्य भावों की भांति आदर, प्रेम, स्नेह, पूज्यभाव, सेवाभाव आदि भी प्रगट होते ही रहे, जिसे आगे चलकर विविध प्राकर और भावों की विविध रूप से अभिव्यक्ति को भक्ति नाम दिया। जिनमें व्यक्ति व्यक्ति या वस्तुमयता से ऊपर उठकर ईश्वरमय बन जाता है।

हमारी संस्कृति ने तो व्यक्तिगत रूप से भी भक्तिभाव का स्वीकार किया है। जैसे कि पितृभक्ति, मातृभक्ति, गुरुभक्ति आदि। उपरांत वात्सल्य भक्ति के रूप में पुत्र भक्ति आदि का भी स्वीकार किया है। इस प्रकार की भक्ति तो पशुपक्षी में भी हम देख सकते हैं। बछड़ा गाय से और गाय बछड़े से प्यार करती है। चिड़िया अपने बच्चे की चोंच में दाने डालकर उन्हें खिलाने का प्रयत्न करती हैं, पक्षी चोंच में चोंच डालकर प्रेम करते हैं, ये सभी लौकिक भक्तिभाव के ही उदाहरण हैं परंतु हम ईश्वर के प्रति जो भक्ति करते हैं उसी भक्ति को श्रेष्ठ मानकर उसकी सराहना करते हैं। क्योंकि उसका सुख क्षणिक नहीं होता परंतु अनंत है। उसमें स्वार्थभाव नहीं परंतु परमार्थ भाव होता है। उसमें अहं नहीं परंतु शरणागति होती है। उसमें सेवा के बाद कुछ पाने की भावना नहीं परंतु पिघल जाने की बात होती है।

दोस्तो! अब मूल विषय पर आईए। एकेश्वरवादी इस्लाम प्रारंभ में काफी संघर्षों से गुजरा। कारलाईन मुस्लिमों के बारे में लिखता है कि एक गरीब और भेड़-बकरियाँ चराने वाली प्रजाति प्राचीन समय से अरण्य में दुनियादारी का कुछ पता न हो इस तरह भटकती थी और सिर्फ एक पयगंबर उसके लिए नाज़िल (अवतरित) हुआ और देखो कि जिसके

प्रति किसीका ध्यान न था, वह प्रजा विश्वविख्यात होने लगी। जो छोटी सी प्रजाति थी वह विश्वमानव बनने लगी और बाद में एक ही सदी में अरबस्तान के आसपास का विस्तार (यूरोप) ग्रेनेडा, स्पेन आदि में स्थापित हुए और दूसरी ओर दिल्ली आदि में।

प्यारे साधको!

मैं यह सब क्यों कह रही हूँ? मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि एक समझदार और जागा हुआ मनुष्य पूरे समुदाय को सुव्यवस्थित कर सकता है। हालांकि मुहम्मद साहब का इरादा तलवार की नौक पर इस्लाम का प्रचार प्रसार करना कभी भी नहीं रहा था परंतु छोटे छोटे कबीलों में रहकर लड़ने-झगड़ने वाले अनपढ़ मरुस्थल से त्रस्त, दुःखी और अबोध प्रजा को एक आध्यात्मिक व्यक्ति के अवतरण से धार्मिक, सामाजिक, बौद्धिक, आर्थिक और आध्यात्मिक दिशा तो अवश्य प्राप्त हुई। मैंने कहीं पढ़ा है कि मुहम्मद के अवतरण के पहले प्रजा असंख्य मूर्तियों की पूजा, भूत, भूवा और घोर अंधश्रद्धा में डूबी हुई थी। ऐसी स्थिति में इस प्रजा को एकेश्वरवाद के तार में पिरोकर संगठित करना अनिवार्य था। अज्ञात आदेश को मानकर मुहम्मदने आदेश दिया कि अल्लाह एक ही है और वह सबसे महान है। कारलाईन पयगंबर साहेब के लिए कहता है कि

Hero as a prophet

जो बात उचित ही है। मुहम्मद पैयगंबर का जीवन ही कुरान का सर्वश्रेष्ठ भाष्य हो सकता है।

एकेश्वरवाद केवल इस्लाम में ही है, ऐसा नहीं है। उपनिषद् भी वही कहते हैं। केवल भाषा का फर्क है। आर्य समाज के स्थापक दयानंद भी यही कहते हैं और मैं भी यही कहती हूँ। फर्क इतना है कि वह एक ईश्वर

सबमें विविध रूप से प्रगट होता है। इसीलिए तो मैंने – सर्वात्मने नमः – मंत्र दिया है। मैं सभी आत्माओं को नमस्कार करती हूँ क्योंकि हम सब परमात्मा का ही अंश हैं। खैर! मुझे बात अल्लाहू मंत्र की करनी है। मंत्र शब्द भारत की देन है औरों के पास मंत्र शब्द की कोई धारणा नहीं है। वे मंत्रों को पवित्र शब्द ऐसा अर्थ करते हैं। और यह सही भी है। दोस्तो! अल्लाहू बहुत छोटा मंत्र है। इसमें केवल नाम की महिमा है। सनातन धर्म की कई धाराएं उपरांत सिक्ख आदि धर्मों में भी नाम जप की अपार महिमा है। इस दृष्टि से देखा जाए तो प्रत्येक धर्म एक या दूसरे रूप में एक दूसरे के साथ चल रहा है। अल्लाहू मंत्र का अर्थ है – केवल अल्लाह। उसके सिवाय कोई नहीं। उससे महान, बड़ा और शक्तिमान कोई नहीं है। उसके सिवाय किसीकी आरजू नहीं, जुस्तजु नहीं। आशा करनी है तो भी उससे और फरियाद करनी है तो भी उससे।

दोस्तो! उसकी याद जब खून के कतरे कतरे में उतर जाए तभी ऐसे मंत्र सार्थक बनते हैं। अल्लाहू शब्द दिल से नहीं परंतु केवल जुबां से निकलता है तो बंदगी अधूरी होती है। मैंने एक सूफी भजन में लिखा है –

दरिया दरिया सागर सागर
नदिया नदिया झरने झरने
जंगल जंगल पर्वत पर्वत
ज़र्रा ज़र्रा कतरा कतरा

तू ही तू .. तू ही तू .. तू ही तू .. तू ही तू ..
मेरा मालिक समीहातू ही तू .. तू ही तू ..
मेरी खलकत खुदा भीतू ही तू .. तू ही तू ..
मेरा अपना परायातू ही तू .. तू ही तू ..
मेरा ग़म और खुशी सबतू ही तू .. तू ही तू ..
मेरा मिलना बिछड़नातू ही तू .. तू ही तू ..

ध्यान : एक नई दिशा (भाग-13) / 89

मेरा खिलना बिखरनातू ही तू .. तू ही तू ..
मेरा चलना औ रुकनातू ही तू .. तू ही तू ..
मेरा बनना और मिटनातू ही तू .. तू ही तू ..

दोस्तो! ये तू ही तू का भाव ही अल्लाहू है। उसे परवरदिगार
कहो, नबी कहो, दाता कहो, अल्लाह कहो या ईश्वर कहो – सब एक ही है।

हर पल, हर क्षण जब उसका भरोसा बना रहे तब अल्लाहू मंत्र
सफल होता है। मैंने एक सूफी भजन में लिखा है –

मेरे परवर दिगार

मेरे परवर दिगार

रैन में चांदनी मेरे परवर दिगार
दिन में रोशनी मेरे परवर दिगार
धूप और छांव में मेरे परवर दिगार
घुंघरू पाँव में मेरे परवर दिगार
सर्द झोंका हवा का मेरे परवर दिगार
दर्द मीठा फना का मेरे परवर दिगार

जिस्म में रूह तू मेरे परवर दिगार
जहेन में इश्क तू मेरे परवर दिगार
इश्क की आबरू मेरे परवर दिगार
दम बदम रूबरू मेरे परवर दिगार
एक ही आरजू मेरे परवर दिगार
एक ही जुस्तजू मेरे परवर दिगार

खून में लाली तू मेरे परवर दिगार
बदरिया काली तू मेरे परवर दिगार
बदरी में कहेकशा मेरे परवर दिगार
गुल कोई महेकता मेरे परवर दिगार
रंग हिना का है मेरे परवर दिगार

संग खुशबू का है मेरे परवर दिगार
शाम का रंग तू मेरे परवर दिगार
तीतली की पंख तू मेरे परवर दिगार
जुगनु में ज्योति तू मेरे परवर दिगार
सीप में मोती तू मेरे परवर दिगार
मिलन की बात तू मेरे परवर दिगार
वस्ल की रात तू मेरे परवर दिगार
मेरे परवर दिगार मेरे परवर दिगार

वाचिक जाप की कोई खास महिमा नहीं है। वह प्रियतम जब रग
रग में उतर जाए और हर शै में उसका दीदार हो वही उसका साक्षात्कार
है। अल्लाह का सच्चा बंदा हरदम यही अरज़ी करता रहता है।

ये अरज़ी आखरी इसको सनम चाहे गरज़ समझो।
अगर सच्चा है चारागर, तो मेरा ये मरज़ समझो।।
यही अरज़ी है, अरज़ी है, अरज़ी है....

मैं गाऊं गीत बन जा।
प्रीत की रीत बन जा॥१॥
चलूं तो रास्ता बन।
रूबूं तो मेरी मंज़िल॥२॥
सोऊं तो नींद बन जा।
जागूं तो होश मेरा॥३॥
पढ़ूं तो बन किताबें।
सुपन देखूं तो तेरा॥४॥
खाऊं तब तू अमीरस।
भूख रोज़ा हो मेरा॥५॥
दिन में तू रौशनी।
रात में तू अंधेरा॥६॥

यही अरज़ी है, अरज़ी है, अरज़ी है....
 अमीरी में अमन बन।
 गरीबी में फ़कीरी॥७॥
 मिलन में तू हो मेहबूब।
 विरह में दर्द मेरा॥८॥
 मेरी हर बात में तू।
 बन के सच ही निक्कल आ॥९॥
 अगर आबाद में हूँ।
 तो तू आबादी बनजा॥१०॥
 हुआ बरबाद जो मैं।
 तो वो मरज़ी हो तेरी॥११॥
 रहूँ मस्ती में मैं तो।
 तू बन जा मौज मेरी॥१२॥

यही अरज़ी है, अरज़ी है, अरज़ी है....

मुस्लमान जब ईद की नमाज़ के लिए जाते हैं, उस दौरान अल्लाहू
 अल्लाहू रटते रहते हैं। एक दिन में असंख्य बार यह मंत्र दोहराते हैं। परंतु
 जब अल्लाहू मंत्र ज़हन से उठे तभी सार्थक है। सारे जप तप जीवन में
 क्रियात्मक नहीं परंतु कितने भावात्मक रूप से होते हैं यह बात महत्वपूर्ण
 है। मैं तो कहती हूँ कि उस अल्लाह से इतने निकट हो जाओ कि मक्का
 मदीना का अनुभव अपने भीतर ही होने लगे। काबा और तूर का दीदार
 अपने भीतर ही हो जाए।

यारी है मक्का मदीना
 यारी काबा तूर है
 यारी है काशी मथुरा
 यारी मेरा नूर है

यारी है जम जम का झरना
यारी है जमना का जल
आब गंगा का है पावन
वो सभी तीरथ का फल

प्यारे साधको!

अल्लाहू बोलना तो आसान है परंतु उसमें खो जाना कठिन है।
इस बात को समझाता हुआ यहाँ मैं मेरा एक सूफी कलाम पेश कर रही
हूँ—

शे'र

अगर मिलने का मकसद है, तो तू इंतज़ार करना सीख।
मोहब्बत का तू मत्था टेक के, इज़हार करना सीख।।
नहीं डरना तू खोने से, या खो जाने से न डरना।
जो खोता है वह पाता है, उसूल ये उसके घर का है।।

झूम झूम के नाच

नाचते नाचते कुछ गा

गाते गाते हंस ले

हंसते हंसते रोले

रोते रोते खोजा

खोके उसमें मिल जा.....

जहाँ खोना है वहाँ बंदा रबजी है -२

हर सांस में खोजा

सुरीली आवाज में खोजा

रूह की बात में खोजा

जिस्म के साज़ में खोजा

इश्क ईमान में खोजा

उसीके ध्यान में खोजा.....

जहाँ खोना है वहाँ बंदा रबजी है -२

तू सूफी संत में खोजा

कभी सतसंग में खोजा

उसीकी धून में खोजा

अपनी ज़हन में खोजा

तेरे तन मन धन से तू

उसकी शरन में खोजा.....

जहाँ खोना है वहाँ बंदा रबजी है -२

दोस्तो! अल्लाह के दीदार कब होंगे ऐसे पूछना ये नासमझी है।

उसके लिए भटकना भी नासमझी है। मैंने तो गाया है कि

वो पागल है जो उसको ढूँढता दैरो हरम में है।

यहाँ अकसर जहाँ सारा एक झूठे भरम में है।।

वो हंसते खेलते और नेक दिल बंदों में रहता है।

सरे बज़ार सच कह दो खुदा संतो से कहता है।।

झूम झूम के गाना सिख ले तब वो आएगा

आंख मूंद के ध्याना सिख ले तब वो आएगा

मेरा प्यारा वो दुलारा

मैंने दिल को उसी पे वारा

अंतर में उतरना सीख ले तब वो आएगा

उनके गुण को गाना सीख ले तब वो आएगा

मेरा प्यारा वो दुलारा

मैंने दिल को उसी पे वारा

उसकी याद में रोना सीख ले तब वो आएगा

बच्चो जैसा हंसना सीखले तब वो आएगा

मेरा प्यारा वो दुलारा

मैंने दिल को उसी पे वारा

रोम रोम से रटना सीखले तब वो आएगा
सांस सांस से जपना सीख ले तब वो आएगा
मेरा प्यारा वो दुलारा
मैंने दिल को उसी पे वारा

अक्रीदत के बिना, श्रद्धा और भक्ति के बिना, प्रेम के बिना,
अल्लाहू अल्लाहू पुकारने से क्या ? यहाँ मेरी लिखी हुई कुछ पंक्तियाँ गौर
से पढ़ना -

जो अपने हर गुनाहों का सदा इकरार करता है।
उसके लाखों गुनाह भी “मोहिनी” वो माफ करता है।।
तड़पता है मचलता है उसीके वास्ते जो दिल।
जो खुद को भूल जाता है उसे वो याद करता है।।
अल्ला बेली.... अल्ला बेली अल्ला बेली अल्ला बेली
कैसी फिकर ! अल्ला बेली !
सच की डगर ! अल्ला बेली !
असली नगर ! अल्ला बेली !
रखता खबर ! अल्ला बेली !

अल्ला बेली.... अल्ला बेली अल्ला बेली अल्ला बेली

अल्लाह का सही बंदा तो वही है कि हर हाल में जिसका भरोसा
डगे नहीं। और बेझिझक जो दुनियां में ऐलान कर सके कि वही मेरा
सच्चा रक्षक है। इस संदर्भ में मैंने एक कव्वाली में लिखा है -

तेरा रखवाला ऊपरवाला - ५

हिना में रंग कली में नजाकत गुलों में खुशबू भरता है
हवा के ज़रिए तेरी सांस में हर पल पिघलता है
तेरी आवाज़ और अल्फाज़ बनकर बोलता भी है
तेरी रूह में कभी वो बनके मस्ती नाचता भी है

वो है सबसे बड़ा दिलवाल...४

ध्यान : एक नई दिशा (भाग-13) / 95

तेरा रखवाला ऊपरवाला

बात को मान ले
उसको पहचान ले
रूबरू जान ले
दिल में तू ठान ले
कोई शक ना रहे
कोई डर ना रहे
कोई गर ना रहे
कोई दर ना रहे
फिर भी वो साथ है
बहुत ही पास
यकीन की बात है
क्यों तू उदास है

बंदा बन जा उसीका मतवाला - ४

तेरा रखवाला ऊपरवाला

आग पानी मिला दे
उसे चमड़ी से बांधे
हवा और आसमां से
मिट्टी में जान डाले
संग से नदिया छोड़े
हवा के रुख को मोड़े
किसीका दिल ना तोड़े
सबकी रग रग में दौड़े
जरीं में जान पूंके
उसकी खलकत न रुके
करम करना ना चूके
औलिया संत झुके

हर बंदा उसीका प्याला

तेरा रखवाला ऊपरवाला

आदमी उसका नाम-जप, बंदगी, सजदा तो करता रहता है, तस्बी घुमाता रहता है परंतु अल्लाह आदमी की बंदगी के मोहताज नहीं हैं। उसकी इतनी बड़ी कायनात में दिन रात बंदगी और सिजदा चलता ही रहता है। अल्लाह की पुकार तो अनेक जगहों से अस्तित्व में अपनेआप उठती रहती है। मैंने मेरे एक नग्मे में गाया है -

तू सुन या ना सुन

तू कर या ना कर

बंदगी होती है

सजदा होता है

सजदा होता है, खलक पे..

सजदा होता है, खलक पे..

पलक हर पल ज़मीं की ओर झुकती रहती है
अशक की लड़ियाँ भी गिरते गिरते बहती हैं
ज़ुल्फें काली घनेरी घुंघराली लहराती हैं
बचपन हो, जवानी हो या उम्र ढलती हो
ज़मीं की ओर चलते देख तेरे पाँव को
कलाई से तू झुकते देख तेरे हाथ को

प्यारे साधको!

केवल अल्लाह नहीं परंतु वास्तव में सभी संप्रदायों के मंत्र मनुष्य की आंतरिक शांति और आनंद की अवस्था में पहुंचने और पहुंचाने के लिए है।

मुझे यहाँ मुहम्मद साहब के जीवन का एक प्रसंग याद आ रहा है। कुरेश के सरदारों का विरोध, अत्याचार, अपमान सबकुछ असफल होता रहा। मुहम्मद के सामने होती हुई सभी साजिशें नाकामयाब साबित होती गईं। जिससे वे सब अंदर अंदर संतलस करके मुहम्मद को मिलने के लिए आते हैं और कहते हैं कि मुहम्मद तू चाहे तो दौलत और सत्ता मांग ले, तू चाहे तो तुझे हम सर्वोपरि सत्ताधीश बना दें। तू चाहे तो तेरे हाथ में तेरे मन पसंद रानियां सोंप दें, तब मुहम्मद ने कहा कि सुनो, मुझे न धन, न सत्ता, न सौन्दर्य, कुछ भी नहीं चाहिए। मालिक ने मुझे मानव जाति के लिए पयगंबर बनाया है उसका संदेश मैं आपको भी सुना रहा हूँ। जो इस संदेश का स्वीकार करेंगे तो इस लोक में उसे आनंद मिलेगा और परलोक में अनंत सुख को प्राप्त करेंगे। लेकिन जो खुदा के वचनों का इन्कार करेंगे तो फिर वही फैसला करेगा। मुहम्मद के चाचा के ऊपर भी अरब नेता उसे समझाने के लिए दबाव डाल रहे थे। तब चाचा ने पयगंबर को समझाने की कोशिश की परंतु नबी जी ने जवाब दिया कि मेरे एक हाथ में सूरज और दूसरे में चांद दिया जाए तो भी मेरे जीवन कार्य को नहीं छोड़ूंगा, मैं सत्ता के लिए पैदा नहीं हुआ हूँ अल्लाह का संदेश फैलाने के लिए मेरा जन्म हुआ है। या तो अल्लाह मेरे हक में न्याय बक्षेंगे अथवा मैं जान कुर्बान कर दूंगा।

प्यारे साधको!

इस्लाम मंत्र अल्लाहू अथवा अल्लाहू अकबर को रोम रोम से रटने वाले बंदे हमेशा हैरत की अवस्था में ही रहते हैं। क्योंकि नई नई सूक्ष्म अनुभूतियाँ उसे हमेशा हैरत में डुबाती रहती हैं। उस आश्चर्य में ही वह उस परम शांति का अनुभव करता है।

प्यारे साधको!

इस्लाम का अर्थ ही है शांति, समर्पण, ईश्वराधीन जीवन और सत्य के मार्ग में अथाक पुरुषार्थ। अल्लाहू अल्लाहू पुकारते पुकारते अपना सबकुछ अल्लाह को तस्लीम (अर्पण) कर देना। दोस्तो! इस्लाम का अर्थ अगर शांति है तो मैं कहूंगी कि प्रेम के बिना शांति कैसी? संतोष के बिना स्वार्थ मुक्ति नहीं होती और स्वार्थ मुक्ति के बिना शांति नहीं होती। जब कामनाओं का नाश होता है तब संतोष और आनंद की अनुभूति होती है। जब अल्लाहू मंत्र के भाव जगत के संदर्भ में चर्चा की तो अब अध्यात्म विज्ञान के संदर्भ में भी थोड़ी बात हो जाए।

जब मनुष्य का भावजगत उत्तेजना पूर्ण होता है तब उसके शरीर के पूरे रसायण बदल जाते हैं। शरीर के प्रमुख तंत्र जैसे कि रक्त अभिसरण तंत्र, पाचन तंत्र, श्वसन तंत्र आदि विशेष रूप से सक्रिय हो जाते हैं। शरीर प्रसन्न होने से देह के करोड़ो कोष खिल उठते हैं। उसे पूरा पूरा प्राणवायु प्राप्त होता है जिससे नए कोष बनने की प्रक्रिया वेगवान बनती है। जीवन में उत्साह बढ़ने के कारण आनंद और शांति भी बढ़ती है। जिसकी वजह से साधक के भीतर और बाहर का माहौल हकारात्मक बनता जाता है। जिससे दूसरों पर भी अच्छा असर पड़ता है। अल्लाह के साथ हू के उच्चार में जोर लगने से मूलाधार चक्र, मणिपूरक चक्र, अनाहत चक्र और कंठ स्थान का विशुद्ध चक्र भी विशेष रूप से सक्रिय होता है। जैविक ऊर्जा पूरे शरीर में विशेष रूप से गतिशील होती है। अल्लाहू मंत्र में लीनता आने से मन अमन हो जाता है। मस्तिष्क निर्भर और निर्विचार होता है। जिसकी वजह से प्राणवायु की बचत होती है। जो आयु, ओज, तेज और शक्ति को बढ़ाने वाला होता है। परंतु याद रहे ये सारी बातें

दूसरे नंबर पर आती हैं। कुछ पाने के लिए कुछ करना यह बात अध्यात्म जगत को गंवारा नहीं है। यहाँ स्वार्थ की भाषा नहीं केवल प्रेम और समर्पण की भाषा चलती है। परमात्मा के प्रिय तो वही हैं जो खुद को मिटा देता है। और केवल अल्लाहू अल्लाहू अर्थात् तू ही तू का स्मरण करता है। दोस्तो! अब प्रतीक्षा किस बात की अगर आपको यह मंत्र जंच गया है तो यह मत सोचना कि आप हिन्दू घर में पैदा हुए हो या मुस्लिम घर में।

प्रत्येक ध्यान विधि कोई सांप्रदायिक ध्यान विधि नहीं परंतु आध्यात्मिक और विशुद्ध वैज्ञानिक विधि है। अल्लाहू शब्द अगर आपको छू रहा है तो उसमें डूब जाओ और परमेश्वर का अनुभव कर लो।



जैन मंत्र ध्यान
(पंच नमोवक्रास)

ध्यान सूक्ति - 188

साधक पंच नमन करी ध्यान से, पाओ परमपद अक्रम ज्ञान से।।

ध्यान विधि - 188

पांचों में से किसी से भी
प्रादंभ करके नमस्कार
ध्यान शुरू करें, आप
अचानक सुविता का
अनुभव करेंगे ।

प्रत्येक युग में प्रत्येक धर्म के पास उनके विशेष मंत्र रहे हैं। उस मंत्र में ही उस धर्म का पूरा सत्त्व समाया होता है। यहाँ मुझे बात जैन मंत्र की करनी है। वैसे तो धर्म के बारे में जितनी बातें करें उतनी कम पड़ जाएंगी और सबसे बड़ी विडंबना यह है कि आज धर्म कहाँ? धर्मों की भरमार में धर्म तो खो रहा है! घुटने महसूस कर रहा है! धर्म के नाम पर जो कुछ भी है वह एक भव्य अतीत है। आज का मनुष्य अतीत से आश्वासन लेता रहता है। आदमी इतिहास से कुछ सीखता नहीं, उसका पुनरावर्तन करता रहता है।

ॐ नमो अरिहंताणं
ॐ नमो सिद्धाणं
ॐ नमो आयरयाणं
ॐ नमो उवज्जाणं
नमो लोए सव्वसाहुणां

प्यारे साधको!

झुकना दो प्रकार का होता है। एक मजबूरी से और दूसरा प्रेम से, श्रद्धा से, भाव से। हर इन्सान में प्रेम से झुकने की क्षमता नहीं होती। जो भाव से संतों के कदमों में विनम्रता के साथ झुक सकता है वही वास्तव में एक जिन्दा मनुष्य है।

दोस्तो! प्रत्येक युग में प्रत्येक धर्म के पास उनके विशेष मंत्र रहे हैं। उस मंत्र में ही उस धर्म का पूरा सत्व समाया होता है। यहाँ मुझे बात जैन मंत्र की करनी है। वैसे तो धर्म के बारे में जितनी बातें करें उतनी कम पड़ जाएंगी और सबसे बड़ी विडंबना यह है कि आज धर्म कहाँ? धर्मों की भरमार में धर्म तो खो रहा है! घुटने महसूस कर रहा है! धर्म के नाम

पर जो कुछ भी है वह एक भव्य अतीत है। आज का मनुष्य अतीत से आश्वासन लेता रहता है। आदमी इतिहास से कुछ सीखता नहीं, उसका पुनरावर्तन करता रहता है। आज जहाँ धर्म भी स्पर्धा और ग्लैमर का विषय बन गया है। धन ऐश्वर्य और प्रदर्शनों को ही महानता मानी जाती हो, मंदिर-मस्जिद देरासर और गुरुद्वारों को ही भगवान का घर माना जाता हो ऐसी स्थिति में धर्म की बात कहाँ से शुरू करें यह एक बड़ा पेचीदा प्रश्न है? खैर! फिर भी निगम (वेदो) तथा आगम (ज्ञानी पुरुषों की वाणी) ग्रंथ मनुष्य की काफी मदद कर रहे हैं।

अंदाजन दस लाख वर्ष पूर्व जैन धर्म की नींव डाली गई। करीब तीन हजार वर्ष पहले पृथ्वी पर आए तीर्थंकर महावीर। वह तो जैन धर्म का एक अंतिम स्वर्ण सोपान था। परंतु महावीर ने जो पंचनमोक्कार मंत्र दिया उस गुण उस लक्षण वाले अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु आज ढूंढेंगे कहाँ? यह विडंबना केवल जैन धर्म की नहीं परंतु समग्र पृथ्वी के धर्मों के लिए यह एक प्राण प्रश्न है।

प्रत्येक युग में दो वर्ग रहे हैं। एक वर्ग चमत्कारों से और ढोंग से आकर्षित होता है और दूसरा सत्य से। आज के काफी धर्म एक चमत्कार का विषय और परंपरा बन गया है और तथाकथित धर्मगुरु यह सब कर रहे हैं। दोस्तो! जैसे प्रत्येक समाज की एक सभ्यता होती है, संस्कृति होती है वैसे ही प्रत्येक धर्म का एक विशेष स्वरूप होता है। यह बाहरी स्वरूप की बात नहीं है। मैं धर्म की आत्मा की बात कर रही हूँ। परंतु यह सब बातें आज कहाँ? आज के धर्मों की स्थिति ऐसी है कि “कारवां गुज़र गया, गुबार देखते रहे।”

मनुष्य की दो प्रकार की समझ होती है। एक किसी के द्वारा दी हुई और दूसरी अनुभव से प्राप्त की हुई। अंतरदृष्टिहीन समझ अंधों के हाथ में लगे हुए हाथी जैसी है। जिसके हाथ में हाथी का जो अंग आया उस अंधे ने हाथी के ऐसे स्वरूप की कल्पना कर ली।

स्वअनुभव में से प्राप्त की हुई दृष्टिपूर्ण समझ गलत नहीं हो सकती। परंतु आज का मनुष्य स्वार्थी हो गया है। वह समझ विकसित करना नहीं चाहता मात्र स्वार्थ साधना चाहता है। आज के मनुष्य को चमत्कार चाहिए। वह आत्मसुख का खोजी नहीं है। वह तो जल्दी जल्दी दुःख दूर करना चाहता है। उसके पास धैर्य है ही नहीं। इसलिए तो इस देश और दुनियां में ढोंगी बाबाओं के दरबार भरे रहते हैं। दंभी लोगों की धार्मिक प्रोडक्ट सबसे ज्यादा चलती है। मैंने यहाँ एक शेर कह रही हूँ –

तबीबों से मैं क्या पूछूं इलाजे दर्द दिल

मरज जब जिंदगी खुद हो, तो उसकी दवा क्या है?

आदमी पूरा पूरा बीमार है। पूरी मनुष्यता बीमार है। उसका इलाज भी बीमारी है। कैसी विडंबना? आज के समाज में कितनी धार्मिक बीमारियाँ फैली कि मनुष्य उससे ग्रस्त भी है और खुश भी।

हिन्दुओं में चौबीस अवतार हो गए। जैनों में चौबीस तीर्थंकर और मुस्लिमानों में चौबीस पयगंबर। आज के मार्केट में जो धर्म चल रहा है ऐसे धर्म के बारे में उन्होंने कभी सोचा भी नहीं होगा और उस बात की कल्पना तो स्वप्न में भी नहीं की होगी कि आज के धर्म उन लोगों के नाम की मुहर लगाकर चलाए जाएंगे।

दोस्तो! उस समय की बातें पढ़कर भी आश्चर्य हो रहा है और आज की वास्तविकताएं देखकर भी। तो क्या धर्म मात्र एक आश्चर्य है?

हरगिज्ञ नहीं। हाँ! धर्म को जो पा लेता है, धर्म को जान लेता है, धर्म में जो उतर जाता है, जो धर्मरूप बन जाता है। वह खुद पहले हैरत से भर जाता है और आश्चर्यरूप होकर साक्षीभाव से जीता हुआ अपना जीवन जी लेता है। वास्तव में धर्म आश्चर्य नहीं परंतु परम सत्य है। जैसे जैसे मनुष्य सत्य को पाता जाता है वैसे वैसे आश्चर्यचकित होकर अस्तित्व के प्रति, ज्ञानियों के प्रति, संतों के प्रति और शास्त्रों के प्रति झुकता जाता है और विनम्र भी होता जाता है।

विनम्रता से ही वंदन प्रगट होता है। विनित व्यवहार से वंदन सुवासित बनता है और समर्पण से वंदन पूर्णत्व को प्राप्त करता है। जैन शासन का मूल है, विनय।

विणओ जिण सासणे मूलो

विणओ निज्जात सहगो

विणओ विप्प मुक्कसे

कओ धम्मो कओ तवो ?

जैन शास्त्र कहता है कि जहाँ विनय नहीं है वह धर्म कैसा ? और वह धार्मिक कैसा ?

humility is the foundation of every vertue.

जैन सूत्र कहता है कि

विणओ नाणम नाणाओ दसणम

दसणाओ चरणम चरणम गति मोक्खो

विनय से ज्ञान प्राप्त होता है। ज्ञान से आत्मदर्शन। आत्मदर्शन से स्वभाव का परिचय होने के बाद संत चरण में स्थान मिलता है और शरणागति से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

आज मुझे कहना पड़ेगा कि इस जैन सूत्र की आज की युवा पीढ़ी को सबसे ज्यादा जरूरत है। आज घर से लेकर स्कूल कॉलेज तक में विनय अदृश्य हो गया है। वहाँ कुछ नियम जरूर हैं जैसे कि छोटे बड़े को विश करते हैं – गुड मॉर्निंग, गुड ईवनिंग परंतु मैं आपसे एक प्रश्न करती हूँ कि ईवनिंग, मोर्निंग और आफ्टरनून तो आते ही रहते हैं परंतु इसमें गुडनेस कहाँ? ज़रा सोचो आपकी सुबह, दोपहर, शाम और रात गुड है!

दोस्तो! ज़रा ध्यान दीजिए। गुड और गोड में एक ही मात्रा का फर्क है। दोनों बहुत निकट हैं। जहाँ गुडनेस है वहीं गोडलीनेस है। परंतु आदमी को कौन समझाए? आज के धार्मिक दुकानदारों में से कोई भी नहीं चाहता कि उसके ग्राहक कम हों। सब अपने अपने मंच हाऊसफुल चाहते हैं। दोस्तो! भीड़ में गुणवत्ता कहाँ से लाएंगे? धर्मक्रांति एक व्यक्तिगत रूपांतरण से आती है। यह भीड़ में संभव नहीं।

कुछ दिन पहले मैंने एक भजन लिखा है –

एक नंबर का आदमी
पर दो नंबर ने घेरा
धंधे चारसो बीस नंबर
फिर लख चौरासी पेरा
किसी को कहो कौन बताए?
कौन किसको समझाए?
जहाँ को कौन जगाए ?
आदमी समझ ना पाए।

जिसने बनाया उसको बनाए
ज़िन्दगी धोखे में ही जाए

रोटी छोड़ क्यों रिश्त ख़ाए?
मन तेरा कभी भर ना पाए
भूल गया है आदमी
दो दिन का डंगर डेरा
धंधे चारसो बीस नंबर
फिर लख चौरासी पेरा
किसी को कहो कौन बताए?
कौन किसको समझाए?
जहाँ को कौन जगाए ?
आदमी समझ ना पाए।

ख्वाहिशें दिन रैन सताएं
सपने में भी सुख ना पाए
मुफ़्त में नींद और चैन गवाएं
जागे तब तक सब खो जाए
कोई मस्तकलंदर के पा पर
यहाँ कोई नहीं है तेरा
धंधे चारसो बीस नंबर
फिर लख चौरासी पेरा
किसी को कहो कौन बताए?
कौन किसको समझाए?
जहाँ को कौन जगाए ?
आदमी समझ ना पाए।

खैर! यह तो सिर्फ़ एक दृश्य खींचा है। ऐसे तो अनेक दृश्य हैं।
जो गुड नहीं हैं फिर भी दुनियां में सुबह से शाम तक गुड मॉर्निंग से लेकर
गुडनाईट होती रहती है।

सृष्टि के आरंभ से लेकर आज तक प्रत्येक धर्मों ने समान्तर रूप से वंदन की बात की है। नमस्कार की महिमा गाई है। हिन्दू धर्म शास्त्रों में तो नमः शब्द कदम कदम पर आता है। फिर भी मैं कहती हूँ कि आज के युग में विनय की सबसे ज्यादा आवश्यकता है। आज का मनुष्य कठोर अहंकारी और संवेदना शून्य होता जा रहा है। शिक्षण बढ़ा परंतु शिक्ष-दीक्षा अदृश्य हो गई। मनुष्य में एटीकेट आया परंतु भावजगत शून्य हो गया। उसने विदेशी भाषा सीख ली परंतु देशप्रेम और मौलिकता चली गई।

महावीर स्वामी को अंदाजन ढाई हजार वर्ष पहले जैन शासन में विनय स्थापित करने की आवश्यकता लगी होगी, उन्हें लगा होगा कि धर्म की शरण में आदमी का झुकना उसके कल्याण के लिए अनिवार्य है और तब उन्होंने पांच नमस्कार मंत्र दिए। परंतु समय के साथ कई बातें जैसे सांप्रदायिक औपचारिकता बन जाती है ऐसा ही इस मंत्र के साथ भी हुआ। इससे बड़ी करुणा की बात क्या हो सकती है? आज के समाज की विनम्रता ओढ़ी हुई है उसमें वास्तविक विनय का दर्शन नहीं हो रहा है।

प्यारे साधको!

सत्य को उपलब्ध होने के दो मार्ग हैं— ज्ञान और विज्ञान। विज्ञान की शिक्षा के लिए तो अनेक मार्ग खुले हैं परंतु ज्ञान के लिए तो ज्ञानी पुरुष, ज्ञान दृष्टि और ज्ञान शास्त्र ये तीन ही मार्ग हैं। जिसमें ज्ञानी पुरुष मूल स्रोत है। जिस समाज में ज्ञानी पुरुष का जन्म नहीं होता वह समाज असहाय है। मैं कहती हूँ कि ऐसा समाज एक अर्थ में अंधा है, पंगु है। कभी कभी ऐसा होता है कि आंख होते हुए भी कुछ लोग देखना ही नहीं

चाहते हैं। ऐसे लोगों का क्या करें? मैंने एक भजन में मनुष्य को चेताते हुए लिखा है कि

बंदा चित को चेता ले
बंदा चित को चेता ले
लकड़ी काट के आग लगाई
आग लगा के धूनी चेताई
धूनी चेताना बेमतलब है
समझ बिना धोखा ये सब है
कोई पेड़ तू सींच न पाया
जीवन भर लकड़ी क्यों जलाया?
घर को छोड़कर जंगल भागा
पर अंतर से तू नहीं जागा
अब तो जाग ले नींद से जोगी
सच में बन जा राम का भोगी

मेरा दिल ये कहता है..

बंदा चित को चेता ले - २

मस्जिद में आजान चेतावे
मंदिर में आरति चेतावे
पर इंसा तू वैसा बहरा
सत् के सुर को सुन ना पावे
दुनियां की बकबक सुनता है
रात में भी सपने बुनता है
जीवन भर बकबक कर सुनकर
सच में बहरा क्यों होता है?
अब तो सुनले बन के सयाना
खुद से क्यों होता बेगाना?

मेरा दिल ये कहता है..

बंदा चित को चेता ले - २

देख शाम का सूरज चेताये
सुबह का चंदा भी चेताये
पर तू वैसा बदकिस्मत है
सच की राह में नाहिम्मत है
आंख मूंद बे अंधा ना बन
जान बूझ अंजाना ना बन
भीतर बाहर है उजियारा
बांह पसारे खड़ा है प्यारा
तोड़ दे सारे बंधन बंदा
छोड़ दे झूठा दुनियां धंधा

मेरा दिल ये कहता है..

बंदा चित को चेता ले - २

कभी गुरु कभी ग्रंथ चेताया
सूफी साधू संत चेताया
गिरते पत्तों ने चेताया
मुरझाते गुल ने चेताया
तवारीख ने खूब चेताया
राजा रंक ने भी चेताया
गर्भवास से जीवनभर सुन
सांस ने सोहं कही चेताया
“मोहिनी” हर पल मौत चेताया
पर मूरख तू चेत ना पाया

मेरा दिल ये कहता है..

बंदा चित को चेता ले - २

आदमी को नहीं चेतना है। वह आंख मूंदकर अंधा बन रहा है। शायद इसी वजह से इतने सारे शास्त्र और धर्मों की आवश्यकता है। मनुष्यता अगर एक ही बार में जाग जाती तो पृथ्वी पर एक ही धर्म काफी होता। इसी संदर्भ में बेचारे कृष्ण को कहना पड़ा होगा कि – सम्भवामि युगे युगे- ।

विनयहीन मनुष्य बिना डाली और पत्तों के सूखे टूट जैसा लगता है जो कभी झुक नहीं सकता। आज तो डालियों और पत्तों को भी झुकना अच्छा नहीं लगता। आज तो बड़ों और बच्चों के बीच की मर्यादा नहीं रही है। दोस्तो! ऐसा होने में गलती किसकी है? यह सोचना मैं आपके ऊपर ही छोड़ती हूँ।

महावीर स्वामी एक विनयशील और सज्जन समाज का निर्माण करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने सभी साधुओं को अर्थात् सज्जनों को भी नमस्कार करने की देशना दी। दोस्तो! महावीर एक अनूठे और एक सजग पुरुष थे। एक फल पूरी टोकरी को न बिगाड़ दे इसलिए उनच्वालीस प्रकार के लोगों को दीक्षा न देने का भी उन्होंने आदेश दिया है। परंतु आज क्या हो रहा है? आज धन केन्द्र में आ गया है और धर्म परिधि में चला गया है।

मैं समझती हूँ कि धर्म को जीवंत रखने के लिए धन आवश्यक है। परंतु सच्चे लोगों की उससे भी ज्यादा आवश्यकता है। धर्म का स्थान पर जब धन ही बैठ जाए तब वह पूरे समाज के लिए घातक बनता है। खैर! मुझे पांच नमोक्कार की बात करनी है। परंतु वहाँ तक पहुंचने के लिए इतना सत्संग आवश्यक था। संतों का काम ही है समाज को जगाना।

धर्म मूढ और धर्मांध लोगों को दृष्टि देना। और महावीर स्वामी ने इस कार्य को किया।

वैसे तो जैनो में ऋषभदेव, अजीतनाथ, संभवनाथ, अभिनंदन, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ, चंद्रप्रभ, सुनिधिनाथ, शीतलनाथ, श्रेयांशप्रभु, वासुनाथ, विमलनाथ, अनंतनाथ, धर्मनाथ, शांतिनाथ, कुंशुनाथ, अरनाथ, मल्लीनाथ, मुनिनाथ, नैमीनाथ, नमीनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी सहित चौबीस तीर्थंकर हुए परंतु अंतिम तीर्थंकर महावीर का इतना प्रभाव रहा कि सामान्य जन के लिए महावीर जैन धर्म का पर्याय बन गए।

काफी लोगों को पूछने पर वे एक ही बात बताते हैं कि जैन धर्म की स्थापना महावीर स्वामी ने की। ऐसा क्यों? क्योंकि महावीर ने समग्र जैन समाज कैसे विनम्र, विशिष्ट, शांत, तथा अहिंसक बना रहे उसपर संपूर्ण ध्यान दिया। उन्हें पता था कि समाज में गुणग्राहकता बढ़े इसलिए उसके परमस्रोत के प्रति समाज को जगाना चाहिए। इसलिए उन्होंने पंचनमोक्कार द्वारा इस लोक संग्रह के कार्य को सिद्ध करने का प्रयास किया। इसमें वे सफल भी रहे।

पंचनमोक्कार में सबसे पहले उन्होंने कहा - ॐ नमो अरिहंताण-
मैं शत्रुओं को हनने वालों को हनने वालों को नमस्कार करता हूँ। दोस्तो!
महावीर ने एक काम बहुत समझदारी का किया। अगर कहीं बच्चे को झुकाना है तो उस स्थान पर पहले पिता को झुकना पड़ेगा। महावीर का अतीत एक राजकुमार का था। तब वे वर्धमान नाम से जाने जाते थे। तीर्थंकर चुने जाने के बाद उन्हें मानो एक धर्म पिता का स्थान प्राप्त हुआ। तीर्थ का अर्थ है जो तार देता है। और मेरे हिसाब से अगर मैं तीर्थंकर का

अर्थ करूं तो ऐसा महापुरुष जो तीर्थों को जन्म देता है। वे ऐसे लोगों को जगा देते हैं कि जिन्होंने दूसरों को तारनेकी क्षमता पड़ी है। तीर्थंकर की जहाँ मौजूदगी हो वहाँ पावनता प्रसरने लगती है। वह जहाँ जहाँ से गुजरे वहाँ वहाँ तीर्थ बनाते जाते हैं।

प्यारे साधको!

ये मेरी समझ है। आपकी धार्मिक डिक्सनरी क्या कहती है? इससे मुझे ज्यादा लेना देना नहीं है। आपको यदि मंजूर हो तो मेरे बताए हुए अर्थ को समझने की कोशिश करना बाकी छोड़ देना।

तीर्थंकर होने के बावजूद भी महावीर ने जो मंत्र दिया उस मंत्र में दूसरों के लिए न कोई उपदेश है, न कोई आदेश, न कोई शास्त्र कथित भगवान का नाम, फिर भी मंत्र से चमत्कार घट गया। ऐसा क्यों हुआ? क्योंकि इस मंत्र में महावीर से खुद से झुकने का आरंभ किया।

दोस्तो! ॐ ईश्वर का ही वाचक है। ईश्वर का ही नाम है। जो बात पहले कई बार हो चुकी है। महावीर ने अरिहतो को ईश्वर का नाम दे दिया। महावीर कहना चाहते हैं कि ईश्वर स्वरूप अरिहतो को मैं नमस्कार करता हूँ। दोस्तो! जब कोई व्यक्ति किसी अभियान को उठाए और उसमें स्वयं जुड़कर शुभारंभ करे तब अभूतपूर्व परिणाम आते हैं। महावीर वंदनीय होने के बावजूद भी खुद झुक गए। अरिहंत का अर्थ क्या है? अरिहंत का अर्थ है, जो अज्ञातशत्रु बन गए। जिन्होंने अपने सारे अंतररिपुओं का क्षय कर दिया। जिनके काम क्रोध आदि शत्रु शून्य हो गए हैं। जो द्वंद्व के पार चले गए, वे हैं अरिहंत। दोस्तो! ऐसे अरिहंत के जैन तत्त्वदर्शन में बारह गुण बताए हैं – अनंतज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चरित्र, अनंत तप, अनंत वीर्य आदि।

प्यारे साधको!

अब यहाँ इन सारे गुणों का अर्थ और वर्णन करने बैठूंगी तो अलग से एक बड़ा ग्रंथ बन जाएगा। छोड़ो! शब्दों की ज्यादा आवश्यकता नहीं है, आवश्यकता है मर्म को समझने की।

ग्रंथ भार को ढोइयो, मरम को ढूँढ्यो नाहि।

गीली रूइ गधा धर्यो, “मोहिनी” कौन उपाय?।

कहने का तात्पर्य इतना ही है कि अरिहंत का ऐसा जीवन होता है कि जिसकी आराधना करने के लिए देवताओं के राजा भी तत्पर रहते हैं। उसकी आभा, प्रभा और प्रसन्नता के पास इन्द्रासन फीका पड़ जाता है। उनके सहज त्याग के चरणों में भोग दंडवत करते हैं। उनके वचन शास्त्र बन जाते हैं। उनके दर्शन से आगे कोई दर्शन शास्त्र नहीं हो सकता। जो स्वयं तप रूप बन गए हों और उसकी आत्मविजय अवस्था के सामने विश्व विजय वामन लगता हो। जिसके लिए संसार होते हुए भी मिट गया हो और ज्ञान की सीमाओं को भी जिसने लांघ लिया हो। ऐसे पहुंचे हुए महात्माओं के बारे में मैंने कुछ पंक्तियाँ लिखी हैं।

इन पैरों से पगडंडी को खुद कंडारा खुद पार किया
उस पार जो जाकर देखा तो न पैर रहे न पगडंडी
वापस भी चले तो कहाँ चलें देखो दुनिया सुख दुःख में जले
अब तो है फैसला होंगे फिदा न पैर रहे न पगडंडी

प्यारे साधको!

जैन धर्म अठारह दोषों का वर्णन करता है। और अरिहंत अवस्था में पहुंचा हुआ प्रबुद्ध पुरुष इन अठारह दोषों से मुक्त होते हैं। जैसे कि

मिथ्यात्व, अज्ञान, मद, क्रोध, माया, लोभ, रति, अरति, निद्रा, शोक, असत्य, चोरी, मत्सर (इर्ष्या), भय, हिंसा, प्रेम, क्रीडा, हास्य।

प्यारे साधको!

यहाँ महावीर स्वामी ने नमुक्कार मंत्र देकर एक साथ तीन कार्य सिद्ध किए हैं। अरिहंतो को मैं नमस्कार करता हूँ ऐसा कहकर अनुयायियों को भी झुकना सिखाया और कैसी आत्मा को झुकना चाहिए, यह भी ज्ञान दे दिया।

“ॐ नमो सिद्धाणं”, दूसरे नमस्कार में मैं सिद्धों को नमस्कार करता हूँ ऐसा कहा।

दोस्तो! सिद्ध कौन? जैन धर्म में पंद्रह प्रकार के सिद्ध बताए हैं। तीर्थंकर सिद्ध, अतीर्थंकर सिद्ध, तीर्थ सिद्ध, अतीर्थ सिद्ध, स्वयं बुद्ध सिद्ध, प्रत्येक बुद्ध सिद्ध, बुद्ध बोधि सिद्ध, स्त्री सिद्ध, पुरुष सिद्ध, नपुंसक लिंग सिद्ध, गृहस्थ सिद्ध, स्वलिंग सिद्ध, अन्यलिंग सिद्ध, एक सिद्ध तथा अनेक सिद्ध। दोस्तो! इन सिद्धों में तीर्थंकर को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। तीर्थंकर जगत में दुर्लभ हैं। जैन शास्त्र कहता है कि तारे को तो सभी दिशाएं जन्म दे सकती हैं परंतु सूर्य को केवल पूर्व दिशा ही जन्म दे सकती है। वैसे ही वह माता धन्य है कि जो तीर्थंकर को जन्म देती है।

प्यारे साधको!

इस विषय पर कभी बाद में विस्तार से चर्चा करेंगे। इधर तो मेरा लक्ष्य आपको केवल नमुक्कार मंत्र समझाना ही है। फिर भी आप सिद्ध का अर्थ समझ लो यह बहुत जरूरी है। सामान्य रूप से लोग ऐसा अर्थ कर लेते हैं कि जिसके पास सिद्धियाँ हो वह सिद्ध। परंतु यह तो बिल्कुल

लौकिक अथवा प्रलोभन युक्त अर्थ है। मेरा एक मौलिक मत है कि साधक के मन में जब तक सिद्धियों का मोह हो, सिद्धियों का उपयोग करने का अथवा प्रदर्शन करने का भाव हो तब तक वह साधक ही है। सिद्धियाँ होने पर भी वह सिद्ध नहीं है। सच्चा सिद्ध तो वह है जो सारी सिद्धियों के पार चला गया हो। ऐसी अवस्था के बाद जो घटना घटती है वह कैसी होती है? उसके बारे में मैंने कुछ पंक्तियों के द्वारा समझाने का प्रयत्न किया है—

अब बिन बादल बरसात हुई
घर मैं ही बिजली कौंध गई
बिन नारा जय जय कार हुई
चाहे मानो या ना मानो

सिद्धावस्था एक अवर्णनिय अवस्था है। वैसे भी मनोविज्ञान का एक सीधा नियम है कि किसी चीज को जब तक प्राप्त न किया हो तब तक ही उसका आकर्षण रहता है। प्राप्त होते ही उसकी तलब खत्म हो जाती है। वैसे ही सच्चा सिद्ध सिद्धियाँ पा लेने के बाद उसके आकर्षण और प्रदर्शन से मुक्त होकर शून्य में चला जाता है। वह न कोई चमत्कार करने की अपेक्षा करता है न तो सिद्धियों के द्वारा किसी को प्रभावित करने की, न तो सिद्धियों का इस्तेमाल करके कुछ प्राप्त कर लेने की। सिद्ध पुरुष एक ऐसे अनुभव से गुजरता है कि अब पाने के लिए कुछ बाकी नहीं रहा हो। उसके मन में कुछ भी पाने की कोई आकांक्षा नहीं बचती है।

यहाँ बिन बाती उजास भया
पैगंबर मेरे पास भया
अब बिन गोपियन का रास भया
चाहे मानो या ना मानो।

यह एक अवर्णनीय अवस्था है। लोग उसके बारे में क्या सोचते हैं उसकी उन्हें परवाह नहीं। सिद्धावस्था के लिए जैन शास्त्र में एक प्यारा सा सूत्र है।

सिवम् अलयम् अरुयम् अणंतम् अखैयम् अव्वाजाह
अपुणरावित्ती सिद्धीगई नामधेयम्

सिवम् का अर्थ है, जहाँ क्षुधा, पिपासा या अन्य उपद्रव नहीं हैं। अलयम् का अर्थ है जहाँ स्थिरता और अचलता है। अरुयम् का अर्थ है जहाँ रोग नहीं हैं। अणंतम् का अर्थ है जो अंत रहित है। अखैयम् से अर्थ है, जो क्षय रहित है। अव्वाजाह अर्थात् जहाँ शारीरिक और मानसिक पीड़ा नहीं हैं। अपुणरावित्ती का अर्थ है कि जहाँ जन्म-मृत्यु का पुनरावर्तन नहीं होता ऐसे परम धाम में निवास करते हैं।

प्यारे साधको!

महावीर ऐसे सिद्धों को वंदन करते हैं। मैंने इतना सारा वर्णन इसलिए किया कि धर्मांध अथवा स्वार्थांध लोग सत्य की आंख पाकर मदारियों और सिद्धों के बीच के भेद को समझ लें। जैन तत्त्व प्रकाश में सिद्धियों के प्रदर्शन करने वालों को कहीं भी सिद्ध नहीं कहा।

तीसरा नमस्कार करते हुए महावीर स्वामी कहते हैं, “ॐ नमो आयरयाणं”। मैं आचार्यों को नमस्कार करता हूँ।

प्यारे साधको!

जैन शास्त्र एक अपभ्रंश भाषा में बना है। वह भाषा आज की बोलचाल की भाषा नहीं रही। इसलिए वह समझने में कठिन लगती है और अन्य संप्रदाय जैसे बड़े समुदाय तक जैन शास्त्र का बोध शायद भाषा की वजह से ही नहीं पहुंच पाया। जैनों की संख्या दुनियां में कम है।

इसका दूसरा भी कारण है। लोग कहते हैं कि इस मार्ग में दमन बहुत है, संकुचितता है इसलिए उसका व्याप नहीं बढ़ा। परंतु मेरी दृष्टि से जैन धर्म इतना गूढ़ है कि उसमें जुड़े हुए लोग भी उस धर्म के रहस्य को और सूक्ष्मताओं को पूरी तरह समझ पाते होंगे या नहीं इसमें संशय है। जैन धर्म के गहन अध्ययन के बाद मैं कह सकती हूँ कि यह धर्म भीरू लोगों के लिए नहीं परंतु जागने में उत्सुक और निर्भीक लोगों के लिए है। इस धर्म की साधारण बातें भी इतनी सूक्ष्म हैं कि वहाँ भेड़िया-धसान नहीं चल सकता। जैन तीर्थंकरों ने अत्यंत सजगता और बारीकी से सत्य, अहिंसा, अचौर्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य आदि मिलाकर पंचशील का बोध दिया। फिर भी काफी-बनिए-शोषण नीति में निपुण हैं। तो सोचिए, अगर जैन धर्म में इतनी बारीकियाँ नहीं होती तो आज इस धर्म की स्थिति क्या होती? मैं तो कहती हूँ कि किसी संप्रदाय में कितना समूह दीक्षित है इसकी महिमा नहीं परंतु सही अर्थ में उस धर्म को समझने वाले और धर्म शिक्षा को ग्रहण करने वालों का महत्व है, सत्य का अनुगमन करने वालों का महत्व है।

तीसरे मंत्र में महावीर स्वामी कहते हैं, -ॐ नमो आयरयाणं-

प्यारे साधको!

आचार्य किसे कहेंगे? आचार्य का अर्थ है, जिसके ज्ञान और आचरण में एकरूपता हो। जिसके वाणी, वर्तन तथा व्यवहार में एकरूपता हो। कितना प्यारा शब्द है आचार्य! आचार्य का अर्थ मैं करती हूँ कि जिसके आचरण में सत्य का दर्शन हो। जिसका आचरण आर्य की भांति हो, प्रमाणिक हो, विशुद्ध हो।

आज प्रत्येक स्कूल में आचार्य मिलेते हैं, आप जरा गौर से देखना तब पता चलेगा कि महावीर क्या चाहते थे और आज क्या है?

आज अनेक धर्म की गादियों पर भी आचार्य बैठे हुए हैं। आचार भ्रष्टों के हाथों में धर्म सत्ता या शिक्षण संस्था हो उससे ज्यादा धर्म और समाज का पतन क्या हो सकता है?

किसी चिंतक के द्वारा बताए गए समाज के सात पापों में से एक में कहा है कि – नोलेज विदआउट करेक्टर। यह कटु वास्तविकता बनकर आज हमारे सामने आ रहा है। जैन शास्त्र के आचारांग सूत्र में कहा है

पंचिंदिय संवरणो तह, नवविह वैभयेरगुत्तिधरो
यउविह कसाय मुक्को इह अहारह गुणोहि संजुतो
पंच महव्वय जुत्तो पंचविहायाह पालण समत्थो
पंच समइति गुत्तो इह, छत्तीस गुणोहि गुरु मज्झं।

यहाँ आचार्य के छत्तीस गुण बताए हैं। जिसमें सत्य, अहिंसा, अचौर्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य इन पांच महाव्रतों का जो पालन करता है। इर्ष्या, भाषा, एष्णा, आदान और उत्सर्ग इन पांच समिति का पालन करता हो। नौ इन्द्रियों से ब्रह्मचर्य का पालन करता हो। जिसके आचार में ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और उत्तम व्यवहार हो। क्रोध, मान, माया और लोभ आदि चार कषायों से जो मुक्त हो। मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति का जो पालन करता हो। श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, जीह्वा और स्पर्श आदि पांच ज्ञानेन्द्रियों को जिसने वश करके रखा हो।

दोस्तो! आज के आचार्यों के बारे में सत्य क्या है? यह सोचना और समझना मैं आपपर छोड़ रही हूँ।

चौथे सूत्र में महावीर कहते हैं कि “ॐ नमो उवज्जाणं”। मैं उपाध्यायों को नमस्कार करता हूँ। दोस्तो! संस्कृत के उपाधि शब्द पर से

उपाध्याय शब्द आया है। जिसका अर्थ है विशेष पदवी या स्थान। जैन शास्त्र के उत्तराध्यायन सूत्र में उपाध्याय के पच्चीस गुण बताए हैं।

पांचवें चरण में कहते हैं कि “नमो लोए सव्वसाहुणां”। मैं सभी साधुओं को भी नमस्कार करता हूँ।

प्यारे साधको!

साधु का अर्थ क्या है? जैन शास्त्र साधु के लिए चौरासी उपमाएं देते हैं। कितना दिव्य होगी ऐसे साधु का जीवन? दूसरी बार बत्तीस उपमा देते हैं। और संतों के सत्ताईस गुण बताएं हैं, वे गुण ही साधु की सच्ची पहचान है।

प्यारे साधको!

मुझे जैन धर्म दर्शन की इस गाथा का वर्णन करते हुए लगता है कि यहाँ महावीर बुद्ध तुलसी, श्रीमद् राजचंद्र, मीरा, गंगा सती, सहजो आदि महान आत्माएं आकर एक मंच पर एक सूत्रता से एक ही बातें कर रही है।

महावीर मंत्र का उपसंहार करते हुए कहते हैं कि यह पंचनमस्कार सर्व पापों को नष्ट करने वाला है और जो इसे पढ़ेगा उसका मंगल होगा।

प्यारे साधको!

हमारे साहित्य निपुण आचार्य कहते हैं कि जो साहित्य लोक मंगल की भावना से रचा गया हो वह सर्वश्रेष्ठ है। इतना ही नहीं परंतु तीन प्रकार के मंगलाचरण में जो वंदनात्मक मंगलाचरण है अर्थात् जिसका आरंभ वंदन से होता है वह भी श्रेष्ठ है। इस मंत्र में इन दोनों बातों का सहज समन्वय हुआ है। महावीर ने मानो अंजुली में सागर भर दिया है।

एक छोटा सा मंत्र क्या कुछ नहीं कह देता ? कितने रहस्यों को समझा रहा है। कितने संशयों को नष्ट करता है और पूर्ण समाधान भी देता है।

अब बात रही पापों के नष्ट होने की। दोस्तो! महावीर तो पाप और पुण्य के द्वंद्व से परे हैं। परंतु आम जनता को जगाने के लिए ये सब गाथाएं कह रहे हैं। अतिसाधारण आदमी को तो पाप और पुण्य का पूरा पूरा बोध ही नहीं है। वह अबोधवस्था में जीवन गुज़ार देता है। परंतु ऐसी अवस्था में जीवन गुज़ार देना यह महावीर को गंवारा नहीं है। इसलिए मंत्र भी दिया और विविध सूत्रों के द्वारा शास्त्रीयता से एक एक बात को स्पष्ट भी किया।

बात इतनी प्यारी है कि मनुष्य का चित्त इसे पढ़कर प्रफुल्लित हो जाता है। ऐसे सत्संग में वास्तविक प्रवेश होने के बाद मुझे नहीं लगता कि मनुष्य पाप में प्रवृत्त हो सके। महावीर जैसे तीर्थंकर एक सिद्ध पुरुष मंत्र में अपनी विशेष ऊर्जापात करते हुए कहते हैं कि इस मंत्र को पढ़ने वाले के समस्त पाप नष्ट हो जाएंगे। यहाँ आस्था का विषय है। कोई चाहे तो तर्क कर सकता है। परंतु महापुरुषों के वचनों पर तर्क करना यह मूढ़ता है। इससे तो अच्छा है कि आप मंत्र के रहस्य को समझो। इस मंत्र, सूत्र तथा इसके संदर्भ में दी गई गाथाएं मनुष्य को एक विशेष दृष्टि देती हैं। महावीर की वाणी मनुष्य की समझ के विश्व को और श्रद्धा के विश्व को उधाड़ देती है।

प्यारे साधको!

तो चलो अब उतरो मंत्र में, करो अनुभव। इस मंत्र को केवल रटना नहीं है, पहले समझना है। ऐसे मंत्र आपको सच्चे खोजी बना देते हैं। रटू तोते नहीं। यह मंत्र आपको तीर्थंकर, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय

और साधु को पहचानने की दृष्टि देता है। फिर अहंकार के पार जाकर ऐसे ज्ञानियों के चरणों में झुकने की प्रेरणा देता है। सही स्थान पर झुकने से अहंकार का शुद्धिकरण हो जाता है। और पाप के रास्ते बंद हो जाते हैं। अगर आपको यह मंत्र रास आया हो तो उसमें डूबो और ध्यानस्थ होकर सफलता का अनुभव करो।





बौध मंत्र ध्यान

ध्यान सूक्ति - 189

मणिपद्म रूप में बनी स्थिरा, साधक साधो समाधि गंभीरा।।

ध्यान विधि - 189

कमल में बिद्याजत उत्तम
मणितुल्य सम्यक संबुद्ध
का ध्यान करते हुए गहन
समाधि में उतर जाओ ।

भगवान् बुद्ध मूल में
ध्यान मार्गी थे। उन्होंने ध्यान के
द्वारा ही ज्ञानोपलब्धि हुई थी।
परंतु समय के साथ बौद्ध की
महायान शाखा में नागार्जुन
जैसे सिद्ध योगी बौद्ध रहने
पर योगाचार्य और मंत्र योग
का बौद्ध सम्प्रदाय में भी प्रचलन
हुआ। मंत्र योग के प्रचार से
महायान ने बहुत कम समय
में विशाल रूप धारण करके
वज्रयान में परिणित हो गया
और चित्त वृत्तियों के निरोध के
लिए बौद्ध योगियों ने मंत्र योग
की आवश्यकता समझी और
वह सफल भी सिद्ध हुआ।

“ॐ मणिपद्मे हूं ”

प्यारे साधको!

विश्वगुरु भारत को ऐसे दिन भी देखने पड़े कि जहाँ धर्म का स्वरूप सकाम हो गया। सत्य, ज्ञान और भक्ति के स्थान पर धर्म केवल मनुष्य की इच्छाओं को पूरी करने का साधन रह गया। पशुबलि से लेकर नरबलि के हिंसात्मक यज्ञों से साधारण मनुष्य से लेकर राजा महाराज भी अपनी कामनाओं को पूरी करने में लगे थे।

जब सत्ताधीश लालची हो जाता है तब प्रजा का स्वार्थी होना भी स्वाभाविक है। ऐसे नाजुक समय में भगवान बुद्ध ने फिर से एक बार इस देश का धार्मिक उद्धार किया।

प्रेम, सेवा और करुणा के पियूष से छलकती बुद्ध की विचारधारा को शाक्य सिंह ने अपनाया। और बौद्ध धर्म के प्रचार में मानव का कल्याण समाया हुआ है इस सत्य को बताकर उसने अपनी शक्ति और संपत्ति को बौद्ध धर्म के प्रचार प्रसार में लगा दिया।

मैं कहूंगी कि ऐसी समझ वाला जब कोई संपन्न मनुष्य किसी ज्ञानी पुरुष का कार्य उठा लेता है तब दोनों परस्पर धन्य हो जाते हैं। क्योंकि सम्पत्ति और सत्य की समझ दोनों का मेल भाग्य से ही होता है।

दूसरी ओर बौद्ध धर्म में आचार विचार संबंधि नियम इतने कठिन थे कि परिपक्व साधक ही उसमें सन्यास ले सकता था। बौद्ध धर्म के सत्यपरक विचार और नीतियों से प्रभावित होकर काफी विद्वान ब्राह्मण और समझदार लोग बुद्ध के संघ में जुड़ गए। कि जिसमें विचार क्रांति और धर्म क्रांति के बीज पड़े थे। महात्मा बुद्ध के निर्वाण के (ई.स.पू. ४८३) छः वर्ष बाद (ई.स. पूर्वे ४७७) महाकाश्यप, उपाली, आनंद आदि पांचसो भिक्षुओं ने सभा भरी जिसमें बुद्ध के विनय तथा धर्म संबंधी विचारों का लोकहित में प्रचार प्रसार करने की विचारणा हुई फिर भी प्रत्येक बुद्ध की विदा के बाद जो अव्यवस्थाएं खड़ी होती हैं ऐसा हुआ और सौ साल के बाद फिर ई.स.पू. ३७७ संघ की दूसरी महासभा ने फिर से बुद्ध विचार को व्यवस्था देने का विचार किया। परंतु समय ने अपना रुख बताया और बौद्ध धर्म १८ शाखाओं में बंट गया। सम्राट अशोक के समय तक बौद्ध धर्म में काफी असंगतियाँ और मतभेद खड़े हो चुके थे। कुछ विपक्षी बौद्धों ने नालंदा को अपनी केन्द्र बनाया और उसकी बहुत प्रसिद्धि हुई।

मौर्य साम्राज्य के खत्म होने के बाद। श्रृंग वंश की सत्ता का प्रारंभ हुआ। फिर से अश्वमेध यज्ञों का प्रारंभ हो गया और बौद्धों पर पुष्पमित्र राजा के सैनिकों ने काफी अत्याचार किए। जिनमें से स्थवीर वादी बौद्ध बचकर सांची चले गए और नालंदा वासी मथुरा। जहाँ बौद्ध

ग्रंथों का संस्कृत भाषा में रूपांतरण हुआ। धीरे धीरे बौद्ध विचार कंधार तक पहुंच गए और उसकी शाखा प्रशाखाएं बढ़ती गई।

प्यारे साधको!

मैं यह सब क्यों कह रही हूँ? दोस्तो, मुझे बात बौद्ध मंत्रों की करनी है परंतु किसी भी धर्म के मंत्र को जानने के पहले उस धर्म विषयक थोड़ी भूमिका की जानकारी भी अनिवार्य है। इस छोटी सी भूमिका से आप समझ गए होंगे कि केवल मनुष्य को ही नहीं परंतु सत्य को भी आबाद रहने के लिए कितना संघर्ष करना पड़ता है!

खैर! अब मूल विषय पर आईए। बौद्ध धर्म में निर्वाण अथवा मोक्ष के लिए तीन मार्ग बतलाए गए हैं। कुछ महात्मा ऐसे होते हैं कि स्वयं की मुक्ति का मार्ग निर्धारण करके मौन में चले जाते हैं, उसे अरहत कहते हैं। जो आत्माएं अन्य के लिए भी मुक्ति मार्ग प्रदर्शित करने के लिए आध्यात्मिक पुरुषार्थ करते रहते हैं उसे प्रत्येक बुद्ध कहते हैं। और जो जगत के मोक्ष के लिए यत्न करते हुए निर्वाण पद को प्राप्त करता है, वह बोधिसत्व कहलाता है।

समय के साथ वह तीनों मार्ग अरहतयान, प्रत्येकबुद्ध यान और बोधिसत्वयान कहलाए। जिसकी अधिकतर प्रवृत्तियाँ सजगता, त्याग, और वितराग पर आधारित थीं।

महाराज कनिष्क के समय प्रसिद्ध दार्शनिक और महाकवि पंडित अश्वघोष ने बौद्धों के लिए बोधिसत्व मार्ग को ही सर्वश्रेष्ठ सिद्ध किया और वहाँ से महायान का प्रारंभ हुआ। अश्वघोष के शिष्य सुप्रसिद्ध रसायणविद तथा दार्शनिक नागार्जुन एक अत्यंत क्षमतावान सिद्ध थे। कहा जाता है कि वे लोहे से सोना बनाने की विद्या जानते थे। माना जाता

है कि उसकी आयु छःसौ वर्ष की थी। उन्होंने प्रज्ञापारमिता नामक दर्शन ग्रंथ के आधार पर शून्यवादी बौद्ध सम्प्रदाय की स्थापना की।

इस महायान बौद्ध धर्म का प्रचार तिब्बत, मंगोलिया, चीन तथा जापान में आज तक पाया जाता है। और बौद्ध की दूसरी धारा हीन यान जिसका प्रचार सिलोन, ब्रह्मा, तथा श्याम में है। हीनयान का साहित्य पाली भाषा में मिलता है और महायान का संस्कृत में।

देस्तो! भगवान बुद्ध मूल में ध्यान मार्गी थे। उन्हें ध्यान के द्वारा ही ज्ञानोपलब्धि हुई थी। परंतु समय के साथ बौद्ध की महायान शाखा में नागार्जुन जैसे सिद्ध योगी बौद्ध रहने पर योगाचार्य और मंत्र योग का बौद्ध सम्प्रदाय में भी प्रचलन हुआ। मंत्र योग के प्रचार से महायान ने बहुत कम समय में विशाल रूप धारण करके वज्रयान में परिणित हो गया और चित्त वृत्तियों के निरोध के लिए बौद्ध योगियों ने मंत्र योग की आवश्यकता समझी और वह सफल भी सिद्ध हुआ। पातंजल योग सूत्र के चौथे चरण में भगवान पतंजलि कहते हैं कि

जन्मौषधि मंत्रः तपः समाधिजाः सिद्धयः।

प्यारे साधको!

जन्म पर तो किसी का वश नहीं है और औषधियों के द्वारा सिद्धि प्राप्त करना च्यवन, पतंजलि, चरक, सुश्रुत और नागार्जुन जैसे सिद्धों के हाथ में ही है। अर्थात् ये सब के बस की बात नहीं है। तब सामान्य जन के लिए तो तीसरा उपाय ही बचता है और वह है मंत्र।

प्यारे साधको!

मंत्रों में अक्षरों के अधिष्ठाता देवों का ध्यान एक प्रारंभिक अंग है।

इस कारण से बौद्धों में मूर्तियों का प्रारंभ हुआ। इसके पहले बौद्ध धर्म में

कोई मूर्ति या मूर्ति पूजा नहीं थी। परंतु मंत्र के देव देवियों के लौकिक परिचय के लिए मूर्तियों का प्रारंभ हुआ। जिनमें वज्रसत्त्व, रत्नसंभव, अमिताभ, अमोघसिद्धि, तथा विराचन नाम के पांच बौद्ध ध्यानी उपरांत कुछ बोधीसत्त्व, हिन्दुओं की दस महाविद्या तथा अन्य अनेक देवी-देवताओं की अवधारणा मूर्ति के रूप में हुई। शैव मार्ग की प्रमुख दस महाविद्याओं में से तारा को बौद्ध धर्म की प्रधान देवी मानते हैं।

बौद्ध धर्म के मंत्र योग और साधन क्रम के ज्ञान के लिए मंजूश्रीमूलकल्प, सद्धर्मपुण्डरीक, सुखावतीव्यूह सूत्र इत्यादि प्रमाणिक ग्रंथ भी प्राप्त होते हैं। बुद्धघोष कृत समथिया अर्थात् समाधि को पढ़कर तो लगता है कि बुद्धघोष सीधी पतंजलि की भाषा ही पढ़ रहे हैं। स्वाभाविक है कि पतंजलि पहले हुए हैं। परंतु हम बुद्धघोष पर पतंजलि की नकल करने का आक्षेप करें उससे बहतर है कि ऐसा समझें कि सत्य को प्राप्त कर चुके दो महापुरुष समान ऊंचाई से बात कर रहे हैं। कभी कभी भाषा भी समान लगती है। ठीक नानक और कबीर की तरह।

प्यारे साधको!

मैं यह सब क्यों कह रही हूँ? आपको बौद्ध मंत्र तक लाने के लिए मुझे यह सब बात करना जरूरी लगा। क्योंकि मैं अगर सीधा बौद्ध मंत्र की बात करूंगी तो कोई तर्क कर सकता है कि भगवान बुद्ध ने तो ऐसा कोई मंत्र नहीं दिया है तो यह बौद्ध मंत्र आया कहाँ से? एक छोटा सा संशय मनुष्य के पूरे आस्थाबल को खत्म कर सकता है। “गुह्यं समाज तंत्र” में स्पष्ट लिखा है कि जहाँ मंत्र योग की गति न हो वहाँ तंत्र का आधार लेना पड़ता है। इस प्रकार मंत्र और तंत्र जुड़ते गए परंतु मंत्र योग

तथा तंत्र विज्ञान से जो लोग अंजान हैं ऐसे लोग मंत्र-तंत्र का गलत अर्थ ही करने लगे।

प्यारे साधको!

मंत्र-तंत्र ये कोई मैली विद्या, वशीकरण, या झाड़फूंक, भूतभुवा आदि की बातें नहीं हैं परंतु वह तो मनुष्य के आत्यंतिक कल्याण का सर्वोत्तम मार्ग है। जो मनुष्य के परम सुख, शांति और आनंद के लिए खोजा गया है।

हाँ! समय के साथ वाम मार्गी तंत्र शास्त्र से अंजान लोगों ने उसका भरपूर दुरुपयोग किया जो आज भी हो रहा है। अर्थ का अनर्थ होकर मंत्र-तंत्र के नाम से काफी दूषण पैदा हो रहे हैं। बौद्ध धर्म में भी ऐसा सब शुरू हो गया था जो भारत में बौद्ध धर्म के लोप का एक कारण है। बौद्ध धर्म का मंत्र-तंत्र मिश्रित मार्ग अथवा अन्य जितनी भी शाखाएं हैं उन सबके मूल तो शैव धारा में ही पड़े हैं। अनुभव के बाद में कह सकती हूँ कि शैव और शाक्त आगम के बाहर कुछ भी नहीं है। प्रत्येक तंत्र-मंत्र का मूल जगत के आदि माता-पिता शक्ति और शिव की वाणी ही है। अब आइए बौद्ध मंत्र की ओर।

बौद्धों का मुख्य मंत्र है - ॐमणिपद्मे हूं। आज भी तिब्बत इस मंत्र से रात दिन गूंजता है। यहाँ मणिपद्म शब्द से मणिपूरक चक्र का ही सीधा संबंध है। इस चक्र के देवता रुद्र का ध्यान बौद्ध लोग -अवलोकितेश्वर- (अक्षोभ्य भैरव) रूप से करते हैं। यहाँ विज्ञान भैरव जो दक्षिण तंत्र शाखा का ध्यान ग्रंथ है; उससे बौद्ध धर्म की काफी ध्यान विधियाँ मिलती झुलती हैं। जिससे यह सिद्ध होता है कि मूल स्रोत तो शैवागम ही है। बौद्धों के मंत्र भी संस्कृत में मिलते हैं और उनकी उच्चार विधि भी

हिन्दुओं के तांत्रिक प्रयोगों से काफी मिल रही है। -ॐ मणिपद्मे हूं- मंत्र के नाद से बौद्ध तांत्रिक अपने मणिपूरक चक्र की शक्ति को जगाकर परमावस्था में प्रवेश करते हैं। इतना ही नहीं परंतु इस मंत्र से विविध सिद्धियाँ प्राप्त करके आवश्यकता लगने पर बौद्ध सिद्धों ने आत्मरक्षा भी की हैं, ऐसे अनेक दृष्टांत मिलते हैं। नागार्जुन का सिद्ध स्थान दक्षिण का श्रीशैल है। जहाँ द्वितीय ज्योतिर्लिंग भी है। हर्ष चरित और मालवमातो नाम के ग्रंथों के संदर्भ से यह सिद्ध होता है कि यह स्थान तांत्रिक केन्द्र था।

नालंदा के बाद भागलपुर के निकट के विक्रमशिला वज्रयान धारा का साधना केन्द्र बन गया। चौरासी सिद्धों में से कई सिद्धों की यह सिद्ध भूमि है। चौरासी सिद्धों की बानी एक अध्ययनशील ध्यानी के लिए पढ़ने योग्य है।

प्यारे साधको!

वैसे तो मंत्र के द्वारा तंत्र सिद्धि के बाद सारी सिद्धियों के पार जाकर समापत्ति में प्रवेश ही बौद्ध धर्म का उद्देश्य और प्राण है। परंतु आपतकाल में धर्म रक्षा और प्राणरक्षा के लिए। सिद्धि का उपयोग करने की शास्त्र और तंत्राचार्य अनुमति देते हैं।

अपने मंत्र बल से लीलावज्र नामक आचार्य ने तुर्कों के प्रथम आक्रमण को निष्फल कर दिया था। आचार्य कमलरक्षित ने अपने योगबल से पांचसौ तुर्कों को भगाया था। कहा जाता है कि उन्होंने तुर्क सेना पर एक सिद्ध कुंभ फेंका और तुर्क लोग खून उगलने लगे और जान बचाकर भागे। परंतु कुछ विशेष सिद्धों की गैरमौजूदगी में साधारण बौद्ध भिक्षु असहाय हो गए और सन् १२०२ में बक्तियार खिलजी ने इस स्थान को लूट कर यहाँ के विशाल ग्रंथ संग्रह को जला डाला। इसके साथ भारत में

बौध तांत्रिकों का अस्त हो गया। कई बौध मठ जलाए गए कईयों को तलवार से घाट उतारा गया। वहाँ से कुछ लोग बौधिक विचार को लेकर सिलोन की ओर गए और ज्यादातर नेपाल तथा तिब्बत के अंजान प्रांतों में चले गए। भारत में जो बौध तांत्रिक बचे वे मिथिला में मिलने की संभावना है। वज्रयान का मुख्य केन्द्र महाचीन बना। उसके पहले इस देश में बौन धर्म की बोलबाला थी और उसका केन्द्रबिन्दु कैलास था। वह वैदिक शिव संप्रदाय का विकृत रूप था। वहाँ धर्म के नामपर जादू-टोना आदि बहुत बढ़ गए थे। तमोगुण प्रधान सकाम उपासना का अतिरेक देखकर तिब्बत सम्राट ने आचार्य शांतरक्षित को अपने देश में निष्कामभाव और प्रेम तथा करुणा से भरे ज्ञानपूर्ण बौध धर्म के प्रचार के लिए आमंत्रित किया। उस दौरान वहाँ अनेक प्राकृतिक उपद्रव खड़े हो गए थे उसकी शांति के लिए वहाँ के राजा के द्वारा पद्मसंभव नाम के एक बौध तांत्रिक को बुलाया गया और माना जाता है कि उन्होंने उग्र देवी देवताओं को शांत किया।

प्यारे साधको!

वर्तमान तिब्बतीय लामा धर्म इन्हीं पद्मसंभव की मूल कृति है। तिब्बतियन उन्हें लामारिनपोचे कहते हैं और उसे अमर मानते हैं। बाद में दिपंकर श्रीज्ञान के प्रकांड विद्वान ने भारतीय बौद्ध ग्रंथों का तिब्बतीय भाषा में अनुवाद किया जो आज भी उपलब्ध है। बाद में तिब्बत में जे-चुन-मिल-रेपा नामक एक श्रेष्ठ तांत्रिक हो गए उनके द्वारा निर्दिष्ट साधना पद्धति का अनुसरण करते हुए आज भी बौध भिक्षुक बीस बीस साल तक एकांत सेवन करके साधना करते हैं। उस गुफा में एक छिद्र से केवल भोजन पहुंचाने का प्रबंध किया जाता है। वहाँ न प्रकाश होता है न किसी

से वार्तालाप। एवरेस्ट आरोहकों को ऐसे तीन सौ जितने एकांतवास के दर्शन हुए हैं।

सबसे आनंद की बात तो यह है कि तिब्बत का राज्य तंत्र ही लामा सिद्धों के हाथ में है। तो प्रजाजनों का आध्यात्मिक होना स्वाभाविक है। उसके प्रधान शासक को दलाई लामा कहते हैं। हो सकता है कि उनमें भी पाखंडी और दुराचारी हों परंतु वज्रयान धारा बच गई।

प्यारे साधको!

तिब्बत में देश भर में अनेकाअनेक मठ विद्यमान हैं। जहाँ प्राचीन प्रणाली से शिक्षा दी जाती है। उन मठों में ग्रहस्थी को प्रवेश नहीं है। वहाँ लाखों लामा “ॐ मणिपद्मे हूं” के गंभीर नाद से बोध धर्म की ज्योति को जाग्रत रख रहे हैं। उन लामाओं के हाथ में एक चरखी जैसा यंत्र रहता है जिसमें कागज़ पर लिखे हुए मणिपद्मे हूं के हजारों मंत्र होते हैं। लामा संत इस चर्खी को एक लय से घुमाया करते हैं और उससे मंत्र जाप का फल माना जाता है। मानो कि यह मंत्र वज्रयान की गायत्री है।

प्यारे साधको!

भारत के आम मनुष्य के पास आज बुद्ध के बारे में बहुत कम जानकारी है। भारत में ही अवतरित और पुराणों के चौबीस अवतारों में मान्य ऐसे करुणामूर्ति बुद्ध के बारे में बचपन में स्कूल में एकाद छोटा सा पाठ पढ़ाए जाने से विशेष जानकारी के रूप में लोगों के पास कुछ भी नहीं है। मैं कहती हूँ कि बुद्ध पृथ्वी पर उतरी एक महान हस्ती थी। वह प्रेम और करुणा की अपूर्व मूर्ति थे। दुर्भाग्यवश भारत ने उसके चिंतन को खो दिया और चीन, तिब्बत, जापान, कोरिया, सिलोन आदि ने प्राप्त किया।

बुद्ध के जीवन की एक अजीब घटना यह है कि उसका जन्म निर्वाण और ज्ञान प्राप्ति तीनों घटना एक ही तिथि पर घटी। जो है वैशाखी पूर्णिमा का पावन दिन। उत्तरीय तिब्बत में इस पवित्र दिन की रात्रि के समय एक चबूतरे पर सभी बौधसिद्धाचार्य एकत्रित होते हैं और बुद्ध का आह्वान करते हैं। कहा जाता है कि आज भी उस आह्वान के वक्त बुद्ध स्वयं प्रगट होकर आशीर्वाद देते हैं और फिर अदृश्य हो जाते हैं। बुद्ध का आह्वान करते वक्त सभी लामा समूह में लयात्मकता से ॐ मणिपद्मे हूं मंत्र की आहलेख जगाते हैं। बुद्ध के त्रिवाक्य जो “धम्मं शरणं गच्छामि”, “संघं शरणं गच्छामि” और “बुद्धं शरणं गच्छामि है।” उसको वह संघ मानो बौध मंत्र के द्वारा मानो सार्थक करता है।

प्यारे साधको!

भारत में कितने आरोह अवरोह से गुजरा बौध धर्म! वह धर्म भले कुछ षडयंत्र और कुछ संघ की गलतियों का शिकार बना परंतु उसके मूल में भगवान बुद्ध जैसी प्रतिभा थी। मूल में सजगता और सत्य था। उस धर्म के मूल में करुणामूर्ति बुद्ध के हृदय में बसा हुआ लोक कल्याण का भाव था जिससे मैं कहूंगी कि वह धर्म खत्म नहीं हुआ परंतु उसका केवल स्थानांतरण हुआ है। उसे पृथ्वी पर से मिटाने का कोई उपाय नहीं है। सत्य को कोई कभी मिटा नहीं सकता। बुद्ध ने भारत के लाखों लोगों को जगाया। मनुष्य को प्रेम और अहिंसा पूर्ण सही धर्म की समझ दी। लोगों में संघभाव जगाया। सम्यक सम्बुद्धों को स्वयं वंदन करके लोगों को विनय भी सिखाया।

प्यारे साधको!

बुद्ध की वाणी का सुप्रसिद्ध ग्रंथ है – धम्मपद। जिसका सर्वप्रथम सूत्र है –

“ते सम्यक संबुद्ध अरहंत भगवंतने नमस्कार”

खैर! मैं प्रकाश डालना चाहती हूँ बौध मंत्र पर। मैं मानती हूँ कि जबतक प्रबुद्ध आत्मा पृथ्वी पर विहार करते हैं तब तक मंत्रों की आवश्यकता नहीं है। परंतु वह ऊर्जा जब विदा ले जाती है तब मंत्रों से मदद मिलती है। राम और कृष्ण मंत्र ही ऐसी ही अस्तित्व में आए हैं। राम, कृष्ण या बुद्ध जैसी आत्माएं जब धरती पर से बिदा लेती हैं तभी दुनियां को पता चलता है कि उन्होंने क्या खोया है? फिर आस्थावान लोग मंत्रों का आधार लेते हैं।

प्यारे साधको!

डॉनाल्ड लोपेज के अनुसार

In fact this mantra is not talkative but vocative.

अर्थात् यह किसी अदृश्य आत्मा को या शक्ति को पुकारने का एक संबोधन है, एक आह्वान है। वैसे तो भारत में कई मंत्र छः अक्षरों के हैं परंतु बौध सम्प्रदाय इस मंत्र को अत्यंत शक्तिशाली मानता है। यह मंत्र समग्र ज्ञान सत्र को अपने में समाए रखता है। आजतक मेरे ध्यान में नहीं आया कि इस मंत्र का सर्वप्रथम उच्चार किसने किया? परंतु हो सकता है कि कुछ वैदिक मंत्रों की भांति यह भी स्वयं ध्वनित हुआ हो। बौध धर्म के तिब्बत जाने के बाद ही संभव है कि किसी बौध लामा के द्वारा यह मंत्र उद्घोषित हुआ हो।

दोस्तो! मंत्र बनाए नहीं जाते वह तो ज्ञानी पुरुषों के हृदय में ध्वनित होते हैं अथवा नाद रूप में सुनाई देते हैं। जो बाद में शब्द रूप पाकर उपासना पद्धति का एक भाग बन जाते हैं। इस कारण से मंत्रों को दिव्य कहा गया है। दोस्तों! वेद के असंख्य मंत्र हैं। परंतु सारे मंत्रों को अपौरुषेय कहा गया है। दिव्य बातें कभी बुद्धि जन्य या बुद्धि गम्य नहीं हो सकती। वह तो अंतरिक्ष में उद्भवित होकर सीधी ज्ञान की भूमि पर उतरती हैं। फिर उन दिव्य मंत्रों का प्रबुद्ध पुरुष साधकों को गूढार्थ समझाकर उसे समझने के लिए प्रेरित करते हैं। साधक की श्रद्धा समग्रता और मंत्र की शक्ति मिलकर सफलता को जन्म देती है।

बौध मंत्र “ॐ मणिपद्मे हूं” इन छः अक्षरों के सूचक अर्थ देते हुए बौध शास्त्री कहते हैं कि ॐ वर्ण आपको मंत्र ध्यान के अभ्यास में पूर्णता प्राप्त करने का तथा उदारता के आशीर्वाद देता है और अहंकार को शून्य करता है।

म – विशुद्ध नित्य के अभ्यास के परिपक्वता में मदद करता है। ईर्ष्या और संसार सुख भोग से निवृत्ति होती है।

नि – सहिष्णुता और धैर्य को अभ्यास की पूर्णता के लिए मदद करता है। वासनाएं और इच्छाओं का विशुद्धिकरण हो जाता है।

पद् – उद्यमशीलता और उत्साह को बढ़ाता है और बोध जगाने में मदद करता है। तथा अज्ञान और पुर्वग्रह छूट जाते हैं।

मे – ध्यान को स्थिर करने में सहायता मिलती है तथा मनोद्वारिद्र्य और अधिकार भाव लुप्त हो जाता है।

हूं – पुर्ण ज्ञानावस्था प्राप्त करने में सहयोग होता है तथा क्रोध और नफ़रत अदृश्य हो जाती हैं।

प्यारे साधको!

यह मंत्र अंतरिक्ष में विहरित सिद्ध शक्तियों को आपकी ओर आकृष्ट करता है। तथा आपको एक अद्वितीय विश्व का अनुभव कराता है। यह मंत्र आपका सिद्धत्व में प्रवेश करा सकता है और मंत्र सिद्ध साधक अंत में बोधीसत्व पद को प्राप्त करता है।

प्यारे साधको!

आपको अगर इस मंत्र में आस्था जग रही है और आप बौध विचारधारा के प्रेमी हैं और आपको लगता है कि मंत्र जाप आपका मार्ग है तो इस मंत्र का आरंभ करो। कुछ विद्वानों के मत से मणिपद्म बोधीसत्व की ही उपमा है। बोधीसत्व का अर्थ है – जिसका पूर्ण ज्ञान में प्रवेश हो गया। वही शिव है, वही भैरव है। संभव हो तो प्रातःकाल में या रात्रि में शांत स्थान में एकांत में बैठकर बुद्ध का आह्वान करके ॐ मणिपद्मे हूं मंत्र का कम से कम एक घंटे तक मंत्र ध्यान कीजिए। कुछ महीनों के बाद ऐसा लगेगा कि आप रूपांतरित हो रहे हो। और आपको अनुभव होगा कि कुछ दिव्य चेतनाओं से आपको मदद मिल रही है। आपका भीतरी शुद्धिकरण होता जा रहा है। एक अज्ञात आशीर्वाद बरस रहे हैं। धीरे धीरे यह ध्यान आपके लिए सहज बन जाएगा। जब तक यह ध्यान सहज न बने तब तक अभ्यास करते रहो। मेरे अनुभव से तो यह मंत्र किसी एक का नहीं परंतु ब्रह्मांड में रमती हुई अनेक प्रबुद्ध चेतनाओं का आह्वान करता है। तो अब यात्रा का आरंभ करो और आध्यात्मिक विश्व की अनुभूति कर लो।



हालैलूयाह मंत्र ध्यान

ध्यान सूक्ति - 190

हालैलूया के मर्म को जानि, पावे विशुद्ध पद पूरन ज्ञानी॥

ध्यान विधि - 190

हालैलूयाह के रहस्यों को
जानकर उस पर ध्यान
करते करते विशुद्ध ज्ञान
में प्रवेश कर लो ।

क्या

आपको नहीं लगता है कि ऐसे पागलों को “याहू” अर्थात् पवित्र परमात्मा की शरण में वास्तविक रूप में जाना चाहिए। वास्तविक रूप में ईश्वर की शरण में कोई तभी जा सकता है कि जब वह अपने भीतर उतर जाए। क्योंकि परमात्मा चीज नहीं है कि जो बाहर ढूंढने से मिल जाए या मंदिर, मस्जित या चर्च में मिल जाए। दुनिया के पागलों को शायद किसी ईसाई धर्म में हुए किसी प्रबुद्ध ने किसी पागल को यही समझाना चाहा होगा कि हे पागल! धर्म के नाम पर मूर्ख की तरह आचरण करने वाले, तू उस परमेश्वर को प्रार्थ।

प्यारे साधको!

ईसाई धर्म का आरंभ ईसू से हुआ। समग्र विश्व के लिए ईसू का हृदय प्रार्थनापूर्ण था। ईसू प्रेम की मूर्ति थे। इसलिए ईसाई धर्म में ईसू के गुणगाण करते प्रार्थनाओं की बहुत बड़ी महिमा है।

दोस्तो! हालेलूयाह मंत्र बिलकुल ॐ जैसा है। वेद के काफी मंत्र ॐ से प्रारंभ होते हैं और ॐ पर पूर्ण होते हैं। वैसे ही हालेलूयाह शब्द मानो ईसाई प्रार्थनाओं का ध्रुवपद है। ईसाईयों का यह पवित्र शब्द है। ग्रीक और लेटिन शब्द अलमलूयाह पर से यह शब्द आया है। और हिब्रू में अनुवादित होकर आधुनिक आल्लेलूयाह शब्द बना है। इस शब्द का अर्थ है – “अरे लोगो! आप याह अथवा जाह को प्रार्थो।” ईसाई साहित्य में हालेलूयाह शब्द का अनेक रूप से प्रयोग हुआ है। इस शब्द के अंतिम दो अक्षर yhwh अथवा jhwh भगवान का नाम है।

हाल्लेलूयाह शब्द प्रारंभ में बाईबल के पुराने करार में पाया जाता है। ज्यूडिज़्म में इस मंत्र के दो शब्द –हाल्लेल– प्रेयर के रूप में इस्तेमाल होते हैं। क्रिश्चन प्रेयर में तथा अंग्रेजी बोली में भी हाल्लेलूयाह उसके मूल

रूप में इस्तेमाल होता है। हिब्रू बाइबल में इस शब्द का चौबीस स्थान पर प्रयोग हुआ है। और ग्रीक अनुवाद की पुस्तक में चार बार।

हिब्रू बाइबल के अनुसार हालेलूयाह दो शब्दों से बना मंत्र है। वैसे तो मैंने पहले बता दिया है कि मंत्र प्रणाली एक पूर्व की धर्म प्रणाली है। परंतु यहाँ मैं आपकी समझ के लिए मंत्र शब्द का प्रयोग कर रही हूँ। संक्षेप में हालेलूयाह का अर्थ इतना ही होता है कि ईश्वर को प्रार्थो। हिब्रू शब्द हालेल का अर्थ होता-उस परमात्मा की आनंदपूर्ण प्रार्थना अथवा आनंद का गीत। और शब्द का दूसरा भाग याह है। जो सृष्टि के परम सर्जक का नाम है। ईसाईयों द्वारा कई स्थानों पर yahweh (याहवेह) अथवा jahovah (यहोवा) नाम से परमात्मा का उल्लेख मिलता है।

इज़रायल में याहवे का अर्थ मुक्ति होता है।

प्यारे साधको!

शब्दों को समझाने के लिए कभी कभी भाषा शास्त्र और भाषा विज्ञान का उपयोग करना पड़ता है ऐसी स्थिति में कभी कभी बात ज्यादा कठिन और पांडित्य पूर्ण लगती है। अध्यात्मिक लोगों को पांडित्य की भाषा बोझिल लगती है। क्योंकि आजतक पंडितों ने धर्म को हमेशा क्लिष्ट बनाए रखने का प्रयत्न किया है।

मैं हमेशा चाहती हूँ कि मेरी बात आपकी समझ के लिए सरलता से आपके सामने रख दूँ। परंतु कभी कभी कुछ नए शब्दों के लिए प्रमाण अनिवार्य हो जाता है।

प्यारे साधको!

मैं जो कुछ भी कह रही हूँ वह केवल हिन्दुओं के लिए नहीं परंतु समग्र मनुष्यता के लिए है। इसलिए कुछ बातें ऐसी भी आती हैं कि भाषा

और शब्दों की गहराई में उतरना पड़ता है। खैर! ईसाई की प्रोटेस्टेंट शाखा में यह मंत्र विशेष रूप से गाया जाता है। मैंने काफी ईसाई स्तुतियों में हालेलूयाह शब्द बार बार आते हुए सुना है और गाया भी है। कई ईसाई परिचितों के साथ बचपन से ही इसाई परंपरा के कुछ भजन भी गाती रहती हूँ। आज भी जब हालेलूयाह शब्द से जुड़ी हुई प्रार्थना गाती हूँ तब एक ब्राह्मण परिवार में मेरा जन्म होने के कारण कुछ लोगों को आश्चर्य होता है और कुछ लोग नाराज़ भी होते हैं। परंतु मुझे जितना आनंद गायत्री मंत्र बोलते हुए आता है इतना ही हालेलूयाह गाने में भी। दोस्तो! आध्यात्मिक अवस्था एक ऐसी अवस्था है कि वहाँ धर्म संप्रदाय का भेद मिट जाता है। सही आध्यात्मिक व्यक्ति को सभी धर्म संप्रदाय के मंत्र और भजन प्रसन्नता और आनंद से भर देते हैं। जब तक आपके मन में भेद रहता है तब तक समझना कि आपका मन बंधा हुआ है। आप कहीं अटके हुए हो किसी संस्कार में किसी धर्म में, किसी संप्रदाय में। जिससे एक बात साबित होती है कि अभी आप द्वंद्व मुक्त नहीं हुए। परमात्मा में भी आप भेद कर रहे हो।

अध्यात्म का अंतिम लक्ष्य आपका अद्वैत में प्रवेश करा देना है। उस हद तक पहुंचना है कि आप और ईश्वर में भी भिन्नता न रहे। ध्यान तंत्र का यह आत्यंतिक उद्देश्य है। और इसीलिए मुझे ध्यान तंत्र पसंद है। इस क्षेत्र के लंबे अनुभव और विविध धर्मों के मंत्रों के अनुभव के बाद मैं यह भी कह सकती हूँ कि प्रत्येक मंत्र आपको ध्यानस्थ कर सकता है। ध्यान अद्वैतावस्था में पहुंचाता है और यह अवस्था आपको समाधिस्थ कर देती है। यह समाधि की अवस्था ही शिवावस्था या बुद्धावस्था है। उस अवस्था

में जिसस भी आप हो, मूसा और मंसूर भी आप हो, मीरा भी आप हो, कृष्ण भी आप हो और राम, महावीर या बुद्ध भी आप हो।

दोस्तो! साधारण मनुष्य इस बात को नहीं समझ पाएगा क्योंकि आज तक ज्यादातर पंडित पुरोहित और गुरुओं ने आपके मन को लघुताग्रंथि से भर दिया है, अपराध भाव से भर दिया है। धार्मिकता के नाम पर आप हीनताग्रंथि का शिकार बन चुके हो। धर्मों के नाम पर आपमें कूट कूट कर पाप-पुण्य की धारणा भर दी गई है। सामान्य मनुष्य स्वप्न में भी सोचने के लिए तैयार नहीं है कि मैं ही राम, कृष्ण, जीसस या बुद्ध हूँ। या फिर वे मुझसे भिन्न नहीं हैं। इसका कारण है आपकी हीनता ग्रंथि। और दूसरा आपने आज तक के सभी अवतारों, तीर्थकरो, पयगम्बरो, ज्ञानी एवं भक्तों को एक महान विभूति के रूप में देखा है, महान व्यक्ति के रूप में देखा है, विशुद्ध चेतना के रूप में देखी ही नहीं अथवा तो उन्हें आपने धर्म ग्रंथों की कहानी के पात्रों के रूप में सुना है, देखा है। मैं कहती हूँ कि उनमें इतनी अतिशयोक्तियाँ हुई हैं कि बहुत सारे सत्य छूट गए हैं। मैं कहूँगी कि एक भी धर्म शास्त्र पूर्ण रूप से प्रमाणिक नहीं है। प्रत्येक ग्रंथ में या तो रचनाकार की ओर से अथवा तो बाद में कुछ न कुछ जुड़ता गया है। वह जुड़ना सत्य भी हो सकता है, असत्य भी। फिर दुनिया उस परिपाटी पर चलकर उन ग्रंथों को ही धर्म का अंतिम आधार मानकर उसके अनुसार भगवान के रूप को समझने की कोशिश करते गए।

मैं कहती हूँ कि भगवान का सही अनुभव मनुष्य केवल स्वयं के भीतर उतरकर ही कर सकता है। क्योंकि सभी शास्त्रकारों ने भगवान पर बहुत कुछ लिखने के बाद भी हाथ खड़े कर दिये हैं और कह दिया है कि संपूर्ण रूप से भगवान का वर्णन करना असंभव है।

मैं भगवान के बारे में लंबा चौड़ा वर्णन करने के बाद फिर मेरी असहायता या पंगुता दर्शाना नहीं चाहती। मैं कहती हूँ कि जो वर्णन के परे हैं; वाणी, बुद्धि, तथा मन के पार हैं। जो केवल अनुभवगम्य हैं ऐसे भगवान को अपना अनुभव ही बना लो।

कबीर कहता है कि पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ। दोस्तो! जो मरना चाहता है उसे मरने दो। आप खुद को बचा लो। मैं तो अंतर की जानी हुई बातें करती हूँ। ध्यान में कुछ मान नहीं लेना है। पंडित, पुरोहित, कर्मकांड, शास्त्र-पुराण आदि से गुज़रकर आप मान लेते हैं कि वे कहते हैं ऐसा ही है। परंतु यह सब तो कोई और कह रहा है, उसमें आपका क्या? ध्यान आपका कमाया हुआ ज्ञान है। वही सत्य है। कथा की कहानियों की तरह आप दूध में पानी डालकर जैसे पानी को दूध के रूप में दिखाते हैं यह ज्ञानार्जन नहीं है, यह तो सरेआम दोखाधड़ी है।

कथाओं में ईश्वर का वर्णन मिलता है परंतु ईश्वर नहीं। ईश्वर का अनुभव तो अपने भीतर होता है। दोस्तो! मैंने वर्षों तक कथाओं का वर्णन किया। परिणाम क्या आया? थोड़ा संगीत, थोड़ा संकीर्तन, थोड़ा लोकरंजन, लोगों का टाइमपासिंग, कथाकारों का धनलाभ, धनाढ्यों को धन खर्च करके धर्म प्रदर्शन करने का मौका। पितृ मोक्ष के नाम से कुछ लोगों की पितृओं से पीछा छुड़ाने की मान्यता। एक ही कहानी का पुनरावर्तन। मेला, भीड़, भड़क्का, हंगामा। हाँ! एक बात अच्छी है बड़ी बड़ी कथाओं में पॉपकोन और खिलोने बेचने वालों से लेकर पंडितों तक की रोजी-रोटी अच्छी तरह से चलती है।

मैं कहती हूँ कि संगीतमय कथा में अगर कोई साधक संगीत समाधि में या श्रवण समाधि में चला जाए तो एक दिव्य घटना है परंतु

वह भी आत्मनिर्भरता नहीं है, एक अवलंबन है। संगीत बंद हुआ और वक्ता चला गया तो श्रोता फिर वही ढाक के तीन पात।

दोस्तो! ध्यान एक स्वतंत्र मार्ग है। बड़ी प्यारी और आध्यात्मिक चुनौति है। मंत्र ध्यान उससे भी प्यारा है। जिसमें आप स्वतंत्र हैं। एक छोटे से मंत्र की सहायता से आप जहाँ बैठे हो वहाँ बैठे बैठे ही अंतरिक्ष में दूर दूर तक तार जोड़ सकते हो। फिर मंत्र कोई भी हो।

अगर आप एक संप्रदायमुक्त मानस के साधक हो तो अनुभव करना कि गायत्री, हालेलूयाह, या अल्लाहू सभी मंत्र आपको समान रूप से शांति देंगे और एकरूप कर देंगे। परंतु इसके लिए आपको पूर्वग्रहमुक्त होना पड़ेगा। पूर्वधारणाओं से मुक्त होना पड़ेगा। आपके धर्म-संप्रदाय-परंपरा और संस्कार के बंधन से मुक्त होकर बिल्कुल कोरे कागज के भांति बन जाना पड़ेगा। अगर ऐसा नहीं कर सकते हो तो भी मंत्र ध्यान के लिए रास्ता तो खुला है। परंतु आपकी जहाँ आस्था है उस मंत्र से ही आपको मदद मिल पाएगी। अन्य को चूक जाएंगे।

अन्य मंत्रों के लिए आपके मन में नकार भाव जागेगा जो कि आपके अध्यात्मिक विकास के लिए विक्षेपरूप है। अध्यात्म में नकारमुक्त होना अनिवार्य है। आप अगर कहीं से बंधे हो तो एक ध्यानी होने पर भी उस धर्म संप्रदाय के बंधन के कारण खुद से ही लड़ते रहेंगे। द्वैतभाव आपका विकास नहीं होने देगा अगर कोई दूसरा मंत्र सुनाई देगा तो उसके प्रति आपकी चेतना आकर्षित होने पर भी आप अन्याश्रय कर रहे हो ऐसे पाप बोध से आपका मन भर जाएगा। नर्क के भय से आप डर जाएंगे। आपका मन लघुताग्रंथि से भर जाएगा कि आप आपके धर्म से विमुख हो रहे हैं। निरर्थक बातों को लेकर अपने अंदर ही अंदर लड़ते रहना ये पागल

के लक्षण हैं। दुनिया के ज्यादातर लोग धर्म के नाम से पागलपन के डोङ्ग ले रहे हैं। इलाज कहीं भी नहीं हो रहा है। बेचारे धार्मिक मरीज धर्म के अस्पताल बदलते रहते हैं। दुनियाँ पागलों से भरी है। करुणा की बात यह है कि उन्हें पता नहीं है। वे सूटेड बूटेड पागल हैं, छाप-तिलक और मंदिर-मस्जिद वाले पागल हैं। दंभी पागल हर प्रकार के पागलों में खतरनाक है।

प्यारे साधको!

तुझे बात करनी है ईसाई धर्म के पावन शब्द हालेलूयाह पर। विकीपीडिया की एक कॉपी में halel शब्द का एक अर्थ मिला है – पागल की तरह या मूर्ख की तरह व्यवहार करने वाला।

दोस्तो! क्या आपको नहीं लगता है कि ऐसे पागलों को “याह” अर्थात् पवित्र परमात्मा की शरण में वास्तविक रूप में जाना चाहिए। वास्तविक रूप में ईश्वर की शरण में कोई तभी जा सकता है कि जब वह अपने भीतर उतर जाए। क्योंकि परमात्मा चीज नहीं है कि जो बाहर ढूंढने से मिल जाए या मंदिर, मस्जिद या चर्च में मिल जाए। दुनिया के पागलों को शायद किसी ईसाई धर्म में हुए किसी प्रबुद्ध ने किसी पागल को यही समझाना चाहा होगा कि हे पागल! धर्म के नाम पर मूर्ख की तरह आचरण करने वाले, तू उस परमेश्वर को प्रार्थ। जिससे तुझे उसकी शाश्वत अनुभूति हो। और हे पागल! सुन वह तेरे भीतर ही है। वह सूक्ष्म है।

प्यारे साधको!

वेद और उपनिषद् भी यह बात करते करते थक गए। परंतु आदमी स्थूल के पीछे ही पड़ा है। या तो वह पागल है अथवा आध्यात्मिक

आलसी। क्योंकि सूक्ष्म के लिए भीतर उतरना पड़ता है। यह एक कठिन आध्यात्मिक पुरुषार्थ है। बाहर से स्थूल का पूजा पाठ करना आसान है। दुनिया के लोग केवल पागल या आलसी नहीं परंतु वे चालाक पागल हैं। वे अपने भीतर उतरना नहीं चाहते हैं। वे ठीक होना ही नहीं चाहते। उन्हें पागलखाना रास आ गया है। और मज़े की बात यह है कि भीतर सूक्ष्म का अनुभव कर लेने के बाद बाहर भी उसका दर्शन होने लगता है। परंतु करुणा की बात यह है कि ऐसे जड़ चेतन में हर जगह पर ईश्वर का दर्शन करने वाले ज्ञानी पुरुषों को दुनिया पागल कहती है। मैंने मेरी सूफी नज़्म जर्ने जर्ने से प्यार में कहीं लिखा है -

आवारा पागल मतवाला
ये तख़ल्लुस पाने वाला
दुनिया से ना डरने वाला
जिन्दा ही जन्नत पाता है

खैर! हालेलूयाह ईसाईयों का एक पवित्र शब्द है और वह संदेश देता है कि विश्वरचयिता और नियंता परमात्मा की आनंद से प्रार्थना करो। दोस्तो! हालेलूयाह आनंद के शब्द हैं। वह प्रतिपल उत्सव मनाने का संदेश देता है, प्रसन्न रहने का संदेश देता है। प्रार्थना पूर्ण हृदय से जीने का संदेश देता है। और प्रार्थना के द्वारा ईश्वर के साथ अत्यंत निकटता साधकर सच्चिदानंदरूप बनने का बोध कराता है। मेरा तो अनुभव है कि हालेलूयाह हालेलूयाह गाने में मस्ती बढ़ती जाती है। आपको भी अगर यह मंत्र जच रहा है और जम रहा है तो ग्रंथि मुक्त मानस से इस शब्द को झूम झूम कर बोलते रहो, सौ बार, हजार बार, असंख्य बार। फिर तो वह अजपाजाप जैसा हो जाएगा। और भगवान का लोक अपने भीतर ही आलोकित होने लगेगा।

महामृत्युंजय मंत्र ध्यान

ध्यान सूक्ति - 191

मृत्यु के महाभय से मुक्ता, मृत्युंजय जपे जो श्रद्धा युक्ता॥

ध्यान विधि - 191

मृत्युंजय मंत्र में ध्यानस्थ
होकर मृत्यु के भय से
पाद चलै जाओ ।

पैदा होने के साथ ही सूक्ष्म रूप से स्वप्न होने की क्षण शुरू हो जाती हैं और अंत में एक दिन ऐसा आता है कि जीवन के दिनों के गिनती का जो अंतिम दिन है, अंतिम क्षण है उसके बाद एक परिचित समाज के लिए एक नाम और संबंध पर पर्दा गिर जाता है। जिसे लोग मृत्यु कहते हैं। परंतु पैदा भी नहीं होना और मरना भी नहीं तथा अनंत चेतना में हमेशा हमेशा के लिए विलीन हो जाने की घटना है-महामृत्यु।

प्यारे साधको!

मृत्यु को जीतना कौन नहीं चाहता ? मृत्यु किसीको अच्छी नहीं लगती। सारी सृष्टि जीवन की उपासना करती है। मृत्यु को कोई नहीं चाहता। परंतु मझे की बात यह है कि जो पैदा हुआ आज तक वह बच नहीं पाया। इस संदर्भ में मैंने एक भजन लिखा है।

क्यों फिरता है मारा मारा,

क्यों खुद से है हारा

तू नहीं है बेचारा, रब्बा तेरे साथ है..

तू देख फलक पे वो सितारे जड़ते हैं

दिन को सूरज से, रात को चंदा से मढ़ते हैं

तू देख बहारों को, हर बाग जो सजते हैं

और बरखा में कहीं दूर से, कई जाम छलकते हैं

ज़रा कर ले भरोसा मालिक सबसे न्यारा न्यारा

तू नहीं है बेचारा, रब्बा तेरे साथ है..

तू देख करामत कोयले संग हीरे को पकाता है

और देख बखूबी मिट्टी में सोने को छिपाता है

ध्यान : एक नई दिशा (भाग-13) / 161

हर शौ में उसका रूप रंग सतरंगी चमकता है
जुगनु में जहन बनकर उसका नूर झलकता है
जरा रखले सबूरी भज ले भगवन प्यारा प्यारा
तू नहीं है बेचारा, रब्बा तेरे साथ है..

हर शख्स को मालिक नाक नक्श नई शक्ल को देता है
पर सबके खून का रंग तो वो लाल ही रखता है
वंजूस के सीने में भी दिल को देता है
और उसमें बस के रैन दिन धड़कता रहता है
तू कर ले यकीं बंदो को उसने तारा तारा
तू नहीं है बेचारा, रब्बा तेरे साथ है..

इस भजन का मूल स्वर यह है कि मृत्यु तो शरीर की होती है
परंतु वह शाश्वत, शिव, अमृत स्वरूप, परमात्मा तेरे साथ ही है। तू
क्षुल्लुक चीजों के लिए दुखी होकर मारा मारा क्यों फिर रहा है?

दोस्तो! आदमी जितना मृत्यु से नहीं डरता इतना मृत्यु की कल्पना
से दुःखी होता है, क्यों? क्योंकि वहाँ हैं – उसकी वासना, इच्छाएँ,
आसक्तियाँ, बहुत कुछ भुगत लेने की लालसाएं। जीवन के कुछ वर्ष
बीतने के बाद उसे पता चलने लगता है कि शरीर क्षीण हो रहा है। मन
भले कितनी भी ऊंची उड़ान भरे परंतु ईश्वर ने मनुष्य के साथ बड़ा मज़ाक
किया है। मन एक है और परमात्मा ने विषय असंख्य पैदा कर दिए।
आदमी शरीर और मन से कितना भी दौड़े परंतु पहुंच नहीं पाता है।
सबकुछ कभी नहीं पा सकता। उसकी लालसाएं उसे थका देती हैं, हरा
देती हैं परंतु मिन्या की टंगड़ी तो ऊंची ही रहती है। अंतिम श्वास तक
आदमी लड़ लेने के मूड़ में होता है।

दोस्तो! अंतिम श्वास तक हौसला बनाए रखना यह अच्छी बात है परंतु अज्ञानपूर्ण हौसला अर्थहीन है। अजाग्रत गिनती ऐसी गलती करा देती है कि जिसे सुधारा नहीं जा सकता। आदमी जिंदगीभर गिनती करता रहता है और अंत में खाली हाथ जाना पड़ता है। मैं खाली हाथ का अर्थ करती हूँ अज्ञान अवस्था में मरना। सत्य को जाने बिना और सत्य में जिए बिना मरना। इससे बड़ी गलती या घाटा क्या हो सकता है?

प्यारे साधको!

मैं तो कहती हूँ कि मनुष्य देह धारण करके जिसने ध्यान को जाना नहीं, ध्यान को समझा नहीं, ध्यान में उतरा नहीं; वह भले कितने भी ऐश्वर्य में जिया हो परंतु उसके जीवन का सौदा घाटे में रहा। किसीने भले हर प्रकार का सुख भोगा हो परंतु ध्यानस्थ होने का समय नहीं निकाला तो मेरी दृष्टि से वह खाली हाथ गया। चूक गया सही क्षणों को। ऐसा आदमी मृत्यु से मुक्त नहीं होता परंतु बेचारा मरता है। उसका धन, दौलत, पद, ऐश्वर्य, कुछ भी उसे न जगा पाया, न बचा पाया।

प्यारे साधको!

अंत में बेचारे होकर मरने की नौबत न आए और आप एक दिव्य मृत्यु को प्राप्त कर सको, एक महामृत्यु को प्राप्त कर सको; इसलिए पूर्व के ऋषि ने एक मंत्र बताया। उस मंत्र को रटने से ज्यादा महत्वपूर्ण है कि उसके गूढार्थ को समझ लो। वैसे भी कोई मंत्र रटने के लिए नहीं होता। उसे जपकर आत्मसात करने के लिए होता है।

प्यारे साधको!

याद रहे रटना स्थूल है और जपना सूक्ष्म। गुजराती में जपने का अर्थ होता है स्थिर हो जाना। मंत्र ध्यान साधक को स्थिरत्व देता है। और ऐसे कई मंत्रों में से एक मंत्र है – महामृत्युंजय मंत्र। इस मंत्र का अर्थ है कि वह इतना महान है कि जो मृत्यु को जीत लेता है, अपने वश कर लेता है। दोस्तो! क्या मृत्यु किसीके वश में हो सकती है? शास्त्रों ने कहा है – असंभव। भारत के मनीषि ने कहा कि –जातस्य ही ध्रुवो मृत्यु-। जिसका जन्म है, उसकी मृत्यु निश्चित है। यह पृथ्वी का एक अटल सिद्धांत है। तो क्या कुछ और मनीषी पागल थे कि जिन्होंने मृत्यु को जीतने की बात की? ना। ऐसा भी नहीं है। उन्होंने मृत्यु की बात ही नहीं की है। उन्होंने तो महामृत्यु पर विजय पाने का राज़ बताया है। दोस्तो! क्या फर्क है मृत्यु और महामृत्यु में।

प्यारे साधको!

पैदा होने के साथ ही सूक्ष्म रूप से खत्म होने की क्षण शुरु हो जाती हैं और अंत में एक दिन ऐसा आता है कि जीवन के दिनों के गिनती का जो अंतिम दिन है, अंतिम क्षण है उसके बाद एक परिचित समाज के लिए एक नाम और संबंध पर परदा गिर जाता है। जिसे लोग मृत्यु कहते हैं। परंतु पैदा भी नहीं होना और मरना भी नहीं तथा अनंत चेतना में हमेशा हमेशा के लिए विलीन हो जाने की घटना है-महामृत्यु।

प्यारे साधको!

मंत्र ध्यान विभाग में महामृत्युंजय मंत्र ध्यान शीर्षक पढ़कर कुछ लोग मंत्र के बारे में और उसके फल के बारे में कुछ जाने लेने के लिए उत्सुक होंगे। ऐसे लोगों में तीन प्रकार हो सकते हैं। एक साधारण व्यक्ति

जो हर जगह से स्वार्थ ढूंढता है, और मरने से डरता है। दूसरा जिज्ञासू और तीसरा आलोचक वृत्ति का व्यक्ति।

तीसरे प्रकार के लोग कुछ सृजन कार्य नहीं कर सकते हैं परंतु उनकी वक्र दृष्टि के कारण और निकम्मेपन के कारण (जिसके पास कोई खास काम नहीं है, ऐसा व्यक्ति) वे बैठे बैठे नकारात्मक स्वभाव के कारण सबकी आलोचना करते रहते हैं परंतु मैं कहती हूँ कि थोड़ा धैर्य रखें। महामृत्युंजय मंत्र ध्यान की ओर जाने से पहले कुछ बातें करनी अनिवार्य हैं। मेरा लक्ष्य न तो धर्मांध लोगों के प्रति है न धर्म स्वार्थी लोगों के प्रति है और न ही आलोचकों के प्रति; मेरा तो लक्ष्य है धर्म जिज्ञासु और ध्यान पिपासुओं के प्रति। मैं मुमुक्षुओं के लिए बोल रही हूँ लिख रही हूँ, गा रही हूँ। कुछ दिन पहले एक घटना घटी। मेरा शरीर अस्वस्थ था। डाक्टर ने कुछ दवाई दे दी जिसका खराब रिएक्शन आया। करीब एक महीने तक अन्न छूट गया। शरीर बहुतकमजोर पड़ गया था। प्रवाही भी मुश्किल से लिया जा सकता था। मुझे जिस डॉक्टर ने दवा दे दी थी उसी डॉक्टर के अस्पताल में भरती कराया गया। अस्पताल का नाम था – नवजीवन। आठ दिन के बाद भी तबियत में कोई सुधार नहीं, डॉक्टर डिस्चार्ज नहीं देना चाहता था, मैं मेरी मर्जी से आश्रम पर आ गई। फिर तबियत और खराब हो गई। कोई दवाई काम नहीं कर रही थी। मेरा शिष्य स्वामी शैलेश्वर घबरा गया। उसको किसी ने कहा कि ब्राह्मणों को बिठाकर महामृत्युंजय के सवालाख जप कराओ। स्वामी शैलेश्वर किसी भी कीमत पर मेरी जिंदगी चाहते थे। उसने मेरे सबसे बड़े भाई का संपर्क करके तत्काल एक-दो ब्राह्मणों की व्यवस्था की। उन लोगों ने कुछ पूजा उपचार की चीजें मंगवाईं। वह शैलेश्वर ने लाकर दे दीं। स्थापन हो गया। मंत्र शुरु

हुए। ब्राह्मणों के साथ मंत्र करने के कितने पैसे लगेंगे यह सब भावताल करके सौदा पक्का हो गया। एक बार मैंने धीरे से खड़े होकर देखा तो उन ब्राह्मणों के मुंह में तंबाकू और गुटके भरे हुए थे। बीच बीच में गप-शप करते थे। कभी मंत्र बोल लेते थे। दोपहर को भाग जाते थे। बेचारे बड़े व्याकुल दिखते थे। दो दिन तक तो मैंने सब नाटक सहन किया। तीसरे दिन चार आदमी आए। निस्तेज, ओजहीन, व्यसनी, ब्राह्मण वेशी चार लोग बातें ज्यादा करते थे मंत्र कम। मैंने शैलेश्वर को कहा कि ये सब चीजें मेरे लिए नहीं हैं। ऐसे लोग तो हमारे ध्यान मंदिर में प्रवेश करने योग्य भी नहीं हैं। आप उसका हिसाब किताब निपटकर सन्मान से विदा दे दो। और शैलेश्वर ने ऐसा ही किया।

फिर मुझे बचाने की दूसरी स्ट्रेटेजी तय की गई। नडियाद के किसी गुरुकुल से एक साथ ब्राह्मणों के बड़े समूह को बुलाकर एक दिन में सवालाख मंत्र पूरे करवाए जाएं। एक आदमी इस कोन्ट्राक्ट को तय करने वाला था। जिसे मैं धर्म के ठेकेदार कहती हूँ। उसने कुछ शरतें रखी कि दक्षिणा के रूप में पर हेड कुछ फिक्स चार्ज रहेगा। दो-बार चायपानी, उपरांत दोपहर का फलाहार, शामको लड्डू का पक्का भोजन और सबको वस्त्रादि देना पड़ेगा। मैं बार बार चलती रहती टेलीफोनिक टॉक सुन रही थी। धन और भोजन पर बार बार ज़ोर दिया जाता था। एक जिंदगी की तो किसीको पड़ी ही नहीं थी। वे लोग तो मेरी बीमारी पर ज़ियाफत उड़ाना चाहते थे। मैंने शैलेश्वर को कहा कि बेटा! हमारा मार्ग ध्यान है। मैं इन सब बातों से ऊपर उठ चुकी हूँ। जीवन का मुझे कोई मोह नहीं है। और अगर धंधादारी कर्मकांडी किसीको जीवन दे सकता है तो दुनिया में

धनवान लोग कभी मरते ही नहीं। बेटा! एक सन्यासी होकर ऐसे झंझट में क्यों पड़ रहा है? क्या वे कर्मकांडी आजीवन यहाँ बैठे रहेंगे? मृत्यु पर किसीभी का वश नहीं। हाँ! मनुष्य का वश जीवन पर है। मैंने जीवन का भरपूर आनंद उठाया है। अध्ययन, सत्संग, लेखन, संगीत, सेवा, दान, शिक्षण आदि से मैं संतुष्ट हूँ। मेरे मन में अब कोई एषणाएं नहीं बची हैं। हाँ! ध्यान की कुछ विधियों को लेकर अभी सात ग्रंथ बाकी हैं। अगर मैं चली जाऊं तो तेरी क्षमता के अनुसार मेरी लिखी हुई सूक्तियों के आधार पर तू विस्तार कर देना। परंतु ये सब ढकोसले की बातें छोड़। क्योंकि मंत्र को समझने वाला, मंत्र को आत्मसात करने वाला, पूरी पूरी आस्था, निष्ठा और निःस्वार्थ भाव से तथा प्रार्थना पूर्ण हृदय से जो मंत्र जाप करे, तभी उसका प्रभाव पड़ता है परंतु मुद्दों पर खिचड़ी पकाने वालों की मदद, मेरा शिष्य चाहेगा? बेटा बाहर आ जा गुरु मोह से। मेरे जीवन की चिंता मुझसे और तुझसे ज्यादा अस्तित्व को है। अगर अस्तित्व अपना काम कराना चाहता है तो मुझे धरती पर रुकना पड़ेगा। और वह मुझे बुलाना चाहता है तो जाने की तैयारी है। चिंता छोड़। एक हजार कर्मकांडियों से तेरी एक पल की प्रार्थना और सेवा का फल हकारात्मक परिणाम ला सकता है। शैलेश्वर ने मेरी बात मान ली और फैसला बदल दिया। भैया को कह दिया कि माँ की हालात ज्यादा नाजुक है ऐसी स्थिति में सारी व्यवस्था करना और झमेला खड़ा करना माँ को विक्षेप करेगा। माँ को शांति की जरूरत है।

दोस्तो! डेढ़ महीने के बाद आज मैं ध्यान विधियों के बाकी सात भागों में से तीसरा ग्रंथ लिख रही हूँ। मैं आज भी कहती हूँ कि अस्तित्व ने

सबकुछ पूर्वनिर्धारित करके रखा है, उसमें विक्षेप क्यों करे? परमात्मा के न्याय को सहर्ष स्वीकारने में ही ज्ञान है। और मृत्युंजय तो रोम रोम से सहज ही रटा जा रहा है।

प्यारे साधको!

यह घटना मैं यहाँ क्यों कह रही हूँ? यहाँ न तो मेरा इरादा किसीका खंडन करने का है न ही मेरे मन में किसीके लिए पूर्वग्रह है। परंतु यह घटना मेरे साधको को, ध्यान प्रेमियों, भक्तों को जगाने के लिए उन्हें निर्भय करने के लिए; वे हर हाल में स्वीकार भाव से जीना सीखें इसलिए कह रही हूँ। अस्तित्व के अनुगामी बनने में जो आनंद है और ऐसे जीने का आनंद जो मैंने पाया है, दुःख, दर्द और पीड़ा में भी साक्षी रहने का जो मज़ा उठाया है वह कुछ और ही है।

प्यारे साधको!

इतना सबकुछ पढ़ने के बाद भी आपके मन में प्रश्न उठ सकता है कि अगर आप महामृत्युंजय मंत्र नहीं कराना चाहती थीं तो इस मंत्र पर ध्यान करने की बात क्यों कर रही हैं?

प्यारे साधको!

आपका प्रश्न ठीक ही है। सबसे पहली बात तो ये है कि यदि आपके मन में कोई ऐसी गलतफ़हमी है कि मृत्युंजय मंत्र में मेरी श्रद्धा नहीं है तो सबसे पहले उसे दूर कर दो। मेरी श्रद्धा प्रत्येक मंत्र में है। प्रत्येक पवित्र वचन मुझे अच्छे लगते हैं। प्रत्येक मंत्र मेरे लिए महामृत्युंजन जितना ही महत्वपूर्ण है। फिर भी मेरे विचारों को समझने की कोशिश

करना। मैं एक सत्यान्वेशी व्यक्ति हूँ। इसलिए मेरी बातों को समझने के लिए आपमें भी कुछ क्षमता होनी चाहिए। अब थोड़ा ध्यान दीजिए।

महामृत्युंजय मंत्र का जप मृत्यु से बचने के लिए है ही नहीं। परंतु स्वयं मृत्युंजय बनने के लिए हैं।

प्यारे साधको!

यहाँ मेरी बात के साथ सहमत होने में आपको थोड़ी तकलीफ हो सकती है। संशय भी हो सकता है। संभव है कि आप मेरे साथ सहमत न भी हों। कुछ भी प्रतिक्रिया करने के लिए आप स्वतंत्र हैं। परंतु इस मंत्र के अर्थ के बारे में पूरी दुनिया एक तरफ और मैं अकेली एक तरफ रहूँगी तो भी मैं मेरे अर्थ से संतुष्ट हूँ और उसपर अटल हूँ। आप मेरे साथ असहमत होने के लिए स्वतंत्र हैं। और मेरी बात पर विचार करके उसे समझकर उसे आत्मसात करके उसका लाभ भी ले सकते हो।

खास करके धार्मिक मंत्रों और स्तोत्रों के बारे में हमारे समाज की एक तकलीफ है, लोग मंत्रों और स्तोत्रों को रट लेते हैं, गा भी लेते हैं, उनके हृदय में भक्तिभाव भी है परंतु गूढार्थ या ज्ञानार्थ तो क्या? वे शब्दार्थ तक को जानने का या समझने की तकलीफ तक नहीं लेते हैं। वे लोग अबोध बच्चों की तरह मंत्र को गाए जाते हैं। करुणा की बात तो यह है कि वे लोग बच्चे जैसे निर्दोष या अबोध नहीं परंतु वे लोग प्रमादी हैं। उनका यह प्रमाद एक अंधी परंपरा, एक अर्थहीन परंपरा, एक नासमझ परंपरा आगे बढ़ाते हैं। ऐसी स्थिति में एक समूहगान, व्यक्तिगत गान अथवा श्रद्धा गान हो सकता है परंतु ज्यादातर तो शाब्दिक ही चलता रहता है। मंत्र का सत्व मर जाता है। गूढार्थ की जानकारी के अभाव में कुछ अलग ही समझ के साथ लोग पीढ़ियों तक रटते रहते हैं। केवल

भारत में नहीं, सभी धर्मों के साथ ऐसा होता रहा है। और ऐसी नामसझियों को दूर करने का अगर कोई प्रयास भी करे तो उसे बहुत देर के बाद स्वीकारा जाता है। ज्यादातर तो झूठ को बहुमति का लाभ मिल जाता है और सत्य का गला घुट जाता है।

लोगों की अंधश्रद्धा और अज्ञान में ही तथाकथित धर्मगुरु और पंडितों की रोटि चलती रहती है। कौन किसे जगाए? लोग भी धार्मिक कम और स्वार्थी ज्यादा हैं। वे अंधश्रद्धा में खुश हैं। मैं किसी को कहने जाऊँगी कि भाई मृत्युंजन मंत्र मृत्यु न आए इसलिए नहीं परंतु वह तो शिवपद की आराधना है तो लोग मुझसे नाराज हो जाएंगे। क्योंकि वे भ्रम में जीना चाहते हैं। वे लालच में जीते हैं। उनका मन एषणाओं से इतना भरा है कि वे चाहते हैं कि मृत्युंजय मंत्र रटने से हम मरेंगे नहीं। मेरा पति नहीं मरेगा, मेरा बेटा नहीं मरेगा... क्या करें इस समाज का। उसे कैसे जगाएं? जो जागना ही नहीं चाहता हो!

खैर! अब महामृत्युंजय मंत्र को समझिए। महामृत्युंजय मंत्र का अर्थ ज्यादातर स्थान पर मृत्यु को जीतने वाला महान मंत्र-ऐसा मिलेगा अथवा महामृत्यु को जीतने वाला मंत्र ऐसा मिलेगा। परंतु मैं कहती हूँ कि मृत्युंजय शिव का विशेषण है। शिव का एक नाम है। शिव जन्म और मृत्यु से परे हैं।

प्यारे साधको!

इससे पहले भी मैं अनेक बार कह चुकी हूँ कि शिव कोई व्यक्ति विशेष नहीं है। वह एक अवस्था का नाम है। मृत्युंजय, अजन्मा, अविनाशा, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, यह सब शिवत्व के विशेषण हैं। यह एक अवस्था है। पुराणों ने आज भी शिव को अजन्मा कहा है। अजन्मा का अर्थ है जिसका

जन्म नहीं हो। दोस्तो! जिसका जन्म नहीं है, उसकी मृत्यु कैसे हो सकती है? मैं कहती हूँ कि जन्म के बिना शरीर का अस्तित्व संभव नहीं है। शिव एक व्यक्ति के रूप में पृथ्वी पर उतरे भी होंगे तो मैं कहती हूँ कि वे एक ऐसी अवस्था पर पहुंच गए होंगे कि उसका अतीत पूर्णतः मिट गया हो। उसकी पुरानी पहचान मिट गई हो। वे पारिवारिक और सांसारिक रिश्तों के पार चले गए, इस धरती पर शिव एक मात्र ऐसी चेतना अवतरित हुई कि जिसके जन्म और मृत्यु के बारे में आज तक कोई कुछ भी नहीं जान पाया। इसी वजह से उसे मृत्युंजय कहा है।

महामृत्युंजय का मैं अर्थ करूंगी कि मृत्यु को जीतने वाला महान ही होता है। शिव ने मृत्यु को जीतकर महामृत्यु में प्रवेश कर लिया। जैसे बौद्धों में महानिर्वाण पद है, वैसे ही मैं कहती हूँ कि महामृत्युंजय की भी एक अवस्था है। शिव के लिए इसका प्रयोग किया गया है। इस तरह से मृत्यु को जीतने वाली महाचेतना की उपासना का मंत्र है—महामृत्युंजय मंत्र। परंतु लोग मृत्युंजय का अर्थ करते हैं कि मृत्यु को जीतने वाला मंत्र। अगर आप ऐसा अर्थ करो तो भी मुझे मंजूर है। क्योंकि मृत्यु को जो जीत लेता है वह जन्म को भी जीत लेता है। जन्म मृत्यु के पार की अवस्था परामुक्ति है। ऐसी मुक्ति देना वाला महामंत्र है – महामृत्युंजय मंत्र।

आप केवल इतना ही अर्थ करो कि यह मंत्र जपने से मृत्यु नहीं आएगी या आदमी मौत से पीछा छुड़ा लेगा और शारीरिक रूप से हमेशा जिंदा रहेगा, तो मैं सहमत नहीं हूँ।

हाँ! एक बात हो सकती है। मृत्यु शैया पर पड़ा हुआ आदमी इस जाप को जपे अथवा उसके आस पास इस मंत्र का जाप ध्वनित हो और उसे इस मंत्र में श्रद्धा हो तो इसके ध्वनि तरंगों से बीमार मनुष्य में विशेष

भक्ति संचार और एक अलौकिक शक्ति संचार हो कि जिससे उसे ज्ञान दृष्टि प्राप्त हो जाए और शिव भक्ति में लीन होकर अथवा मंत्र ध्यान में लीन होकर मृत्यु से निर्भय हो जाए। और निर्भय अवस्था में स्वीकार भाव से मृत्यु का वरण करे। अगर वासना शून्यता से मृत्यु को पाया है तो वह अवस्था ऐसे मनुष्य के लिए मुक्ति बन जाती है। वैसे भी ईश्वर का आश्वासन और आलंबन मनुष्य को निर्भय रखता है। आध्यात्मिक समझ बढ़ने के साथ आलंबन और आश्वासन छूट जाता है और सत्य का स्वीकार होने लगता है, भीतर से निर्भयता जन्म लेती है, यही ज्ञानावस्था है।

प्यारे साधको!

अब मंत्र के अर्थ को शब्दसह देखेंगे।

- ॐ - जो ईश्वर का वाच्य है और एक पावन शब्द है।
त्रयंबकं - त्रिनेत्रों वाला अर्थात् ज्ञानचक्षुपूर्ण।
यजामहे - हम पूजते हैं, सन्मान करते हैं, जो हमारे श्रद्धेय हैं।
सुगंधिम - मधुर महक वाला, सुवासित।
पुष्टि - एक स्वस्थ स्थिति, प्रफुल्लित, तंदुरस्त अथवा समृद्ध जीवन की परिपूर्णता।
वर्धनम - जो पोषण करता है, शक्तिदाता है, सुख सामर्थ्य और समृद्धि की वृद्धि का कारण है, हर्ष को बढ़ाने वाला है। आनंदित करता है। और स्वास्थ्य प्रदान करता है। ऐसा जीवन बगिया का एक अच्छा मालिक।
उर्वारूकम - ककड़ी।
इव - जैसे, इस तरह।
बंधना - तना (लौकी) का।

मृत्युर - मृत्यु से।

मुक्षिया - हमे स्वतंत्र करे, मुक्ति दे।

मा - न

अमृतात - अमरता, मोक्ष।

हम त्रिनेत्रीय (शिव) का चिंतन करते हैं जो जीवन की परिपूर्णता को पोषित करता है और वृद्धि करता है। ककड़ी की तरह हम इसके बंधन (संसार) से मुक्त हों। अमरत्व से नहीं परंतु मृत्यु से मुक्त हों।

प्यारे साधको!

यह मंत्र ऋग्वेद और यजुर्वेद में मिलता है। यह रुद्र मंत्र नाम से भी प्रसिद्ध है। हमारे मनीषियों के मत से यह वेदों का हृदय है। तपश्चर्या की चरम सीमा में दानव गुरु शुक्राचार्य ने इस मंत्र का जाप किया था। शुक्राचार्य एक पहुंचे हुए महात्मा थे। उसे जीवन का कोई मोह नहीं था न मृत्यु का डर। वे परम शिव भक्त थे।

पुराण कथा के अनुसार दक्ष प्रजापति से शापित चंद्र ने इस मंत्र से शिव का आराधन किया था। और शिव के शिरस्थान में उसे स्थान मिला।

प्यारे साधको!

उर्वा का अर्थ होता है ककड़ी, लौकी अथवा कद्दू। मंत्र का गूढार्थ यह है कि हे त्रिनेत्र शिव! जिस तरह ककड़ी उसके बेल के बंधन से सहजता से मुक्त होकर पृथ्वी पर गिर जाते हैं इस तरह हमारे मन के संसार के प्रति के सारे बंधनों से हम मुक्त हो जाएं ताकि बार बार मरना और जन्मना न पड़े। अंतिम वार शरीर को छोड़कर ज्ञान दृष्टि से हमारा शाश्वतता में प्रवेश हो।

प्यारे साधको!

यहाँ ककड़ी तो एकमात्र प्रतीक है। मंत्र के साथ ककड़ी का कोई वास्तविक संबंध नहीं है।

दोस्तो! उर्वा का दूसरा अर्थ है विशाल, शक्तिशाली, और मृतःप्राय। और अरुक्म का अर्थ है रोग। इस तरह से संधि विग्रह करने से ऐसा अर्थ भी अभिप्रेत है कि हे प्रभु! कई प्रकार के महारोग हैं, जैसे कि असत, अविद्या, एषणा, आदि। आप शिव तो प्रत्येक स्थान में विराजित हो परंतु हम अज्ञानवश इसे देख नहीं सकते। हे प्रभु! आप इन्द्रियाँ, धातु, एवं पंचभूतों द्वारा बनाए शरीर को काम क्रोधादि महारोगों से मुक्त करो। जो मृत्यु के कारण हैं, मृत्यु को देने वाले हैं। और सर्वशक्तिमान शिवत्व में हमें समा लो। जहाँ शाश्वतता और आनंद ही आनंद है।

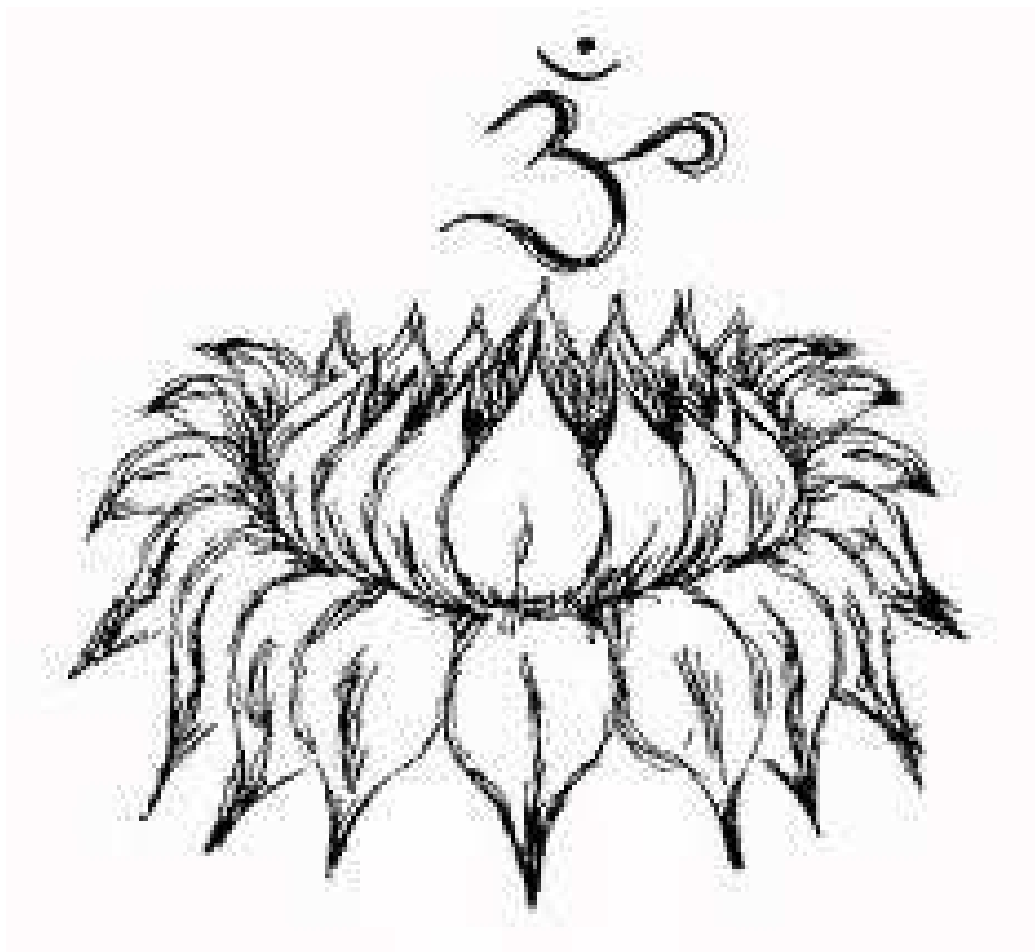
प्यारे साधको!

कितना अद्भुत है यह मंत्र! और लोगों ने इस मंत्र को जीवन जीने की आसक्ति के साथ जोड़ दिया। कैसी करुणा? भारतीय दर्शन और मंत्रों के साथ काफी नाइन्साफ हुआ है। खैर, छोड़ो!

मैं तो इतना ही कहना चाहूंगी कि इस मंत्र से शिवत्व की आराधना करते करते आप ध्यान की अंतिम ऊंचाई तक पहुंच जाओ कि जहाँ सारी वासनाएं बेल पर से जैसे ककड़ी सहजता से गिर जाती है वैसे पककर गिर जाए और आप जीते जी सारे बंधनों से मुक्त हो जाओ। फिर लंबे जीवन की भी वासना न रहे। स्वयं को अस्तित्व की इच्छा पर छोड़कर जीते जी मोक्ष का अनुभव कर लो। फिर मृत्यु आपको मार नहीं पाएगी। वह केवल देह के आखरी बंधन से मुक्त करेगी। आपको शरीर से छूटने की कोई पीड़ा नहीं होगी और आपका मृत्यंजय मंत्र सफल हो जाएगा।

अब प्रश्न मत उठाना कि मंत्र कब करें और कितने करें। मुक्ति की अवस्था का अनुभव न करो तब तक उसमें लीन होते रहो। एक दिन आपका ध्यान समाधि बनकर आपको शिवरूपता प्रदान करेगा।





एक महाचेतना के परिचय का प्रयास.....

कोई व्यक्ति हो तो हम परिचय भी दें। परंतु एक घूमती फिरती चेतना का परिचय शब्दों से देना कैसे संभव होगा!

प्रबुद्धत्व के प्रवाह में गुरुमैया डॉ हरेश्वरीदेवीजी एक नया उद्गम है, एक अपूर्व आरंभ है। आज तक के किसी भी धर्म संप्रदाय सूत्रों में न जुड़कर समाज को एक नई दिशा दर्शन कराने वाली एवं धर्मक्रांति करने वाले तथा ध्यान-योग में एक विशिष्ट खोज करके ध्यान-योग में उत्क्रांति करने वाली विश्व की

प्रथम नारी ऊर्जा है।

प्रत्येक युग में ज्ञान और भक्ति के मार्ग में एक विशेष नारी ऊर्जा का प्रभाव रहा है। वह फिर गार्गी हो, मैत्रेयी हो या मीरा परंतु ध्यान मार्ग में पूज्य गुरुमैया एक नया शुभारंभ है। जिसकी नींव कोई धर्म या दार्शनिक परंपरा पर नहीं है। बचपन से ही निर्भीकता, तेजस्विता, स्वतंत्रता एवं वाणी में ओजस्विता वे उनके सहज गुण रहे हैं।

एकांत स्थान में रहना, प्रकृति को आत्मसात करना और कठिन साधना पद्धतियों से गुजरना एवं शास्त्रों का गहन अध्ययन करना यह गुरुमैया का स्वभाव है।

तथाकथित धर्मगुरुओं, द्वेषपूर्ण हृदय के लोगों, और काले पत्रकारित्व की ओर से उठती हुई बाधाओं के सामने हिमालय की भांति अडिग रहकर समाज को सही धर्म के लिए जगाना ये गुरुमैया का अभियान रहा है।

ऐसी अपूर्व नारी ऊर्जा का जन्म २४ जून अषाढी बीज सन् १९६४ में हुआ। आरंभ के पैंतीस वर्ष तक धर्मक्रांति और ध्यानक्रांति के द्वारा मानव मन के परिमार्जन का कार्य किया और अब गुजरात के संस्कार नगरी वडोदरा में ध्यान मंदिर की स्थापना करके लोगों को आध्यात्मिक रूप से सजग कर रही हैं। भौतिक सुखों से तृप्त तथापि अतृप्त और शांति के खोजियों के लिए पूज्य गुरुमैया एक कल्पवृक्ष बनकर आध्यात्मिक छत्रछाया दे रही हैं और ध्यान के माध्यम से मनुष्य को आत्मसंतोष के विश्व का दर्शन उनके भीतर ही करा रही हैं। पूज्य माँ कहती हैं कि—

मुसाफिर हूँ जगाने आई हूँ खलकृत के लोगों को।

चली जाऊं तो तुम चुपचाप मेरे काम में लगना।।

उपरोक्त मुक्तक ही प्रबुद्धात्मा गुरुमैया हरेश्वरीदेवीजी के परिचय के लिए काफ़ी है। फिर भी कुछ कहना चाहता हूँ -

प्रबुद्ध रहस्यद्रष्टा माँ हरेश्वरीदेवीजी विश्व के आज तक के ध्यानगुरुओं में सर्वप्रथम एक ऐसी नारी ऊर्जा है कि जिन्होंने ध्यान की अनेक नई विधिओं की शोध की और कुछ प्राचीन विधिओं की पुनर्शोध करके भाषा को सरल बनाकर ध्यान सुक्तियाँ नाम से नया ध्यान शास्त्र रचकर ध्यान पिपासुओं को उन विधियों की वैज्ञानिक समझ भी दी। विश्व को एक ऐसे ध्यान शास्त्र की आवश्यकता थी जिसे मनुष्य आसानी से समझ पाए। एक ऐसे धर्म की ज़रूरत थी कि जहाँ स्वतंत्रता और स्वच्छंदता के नाम से मानव मूल्यों का हास भी ना हो तथा धर्म के ऐसे जड़ बंधन भी न हों कि जहाँ मानव मुरझा जाए। विश्व को एक ऐसे धर्म की ज़रूरत थी कि जहाँ मनुष्य को भगवद्ता, नैतिकता, मानव मूल्य, ब्रह्मचर्य या अनुशासन सिखाना न पड़े, ना उसके ऊपर ये बातें थोपनी पड़ें परंतु साधक एक ऐसा माहोल प्राप्त करे कि उसकी जीवन शैली सहजता से बदल जाए। शुभ विचार और सद्गुण उसमें पनपने लगें।

विश्व को ऐसा माहोल देने के लिए पूज्य गुरुमैया अंतिम पैतीस वर्ष से विविध मार्ग से आध्यात्मिक पुरुषार्थ कर रही हैं। मैं अब स्वानुभव के द्वारा कह रहा हूँ कि अब पूज्य गुरुमैया के द्वारा एक ऐसे माहौल का निर्माण हो चुका है।

पूज्य गुरुमैया अनेकानेक भ्रमजालों में घिरे हुए समाज को धीरे धीरे मुक्त कर रहीं हैं। एक नारी शक्ति के द्वारा उठाई गई ये चुनौति कोई साधारण नहीं है। पूज्य गुरुमैया का जन्म गुजरात-सौराष्ट्र के भावनगर जिले के गढड़ा स्वामीना में एक औदीच्य ब्रह्माण परिवार में २४ जून १९६४ में हुआ। गढड़ा जैसे गाँव में इसे धर्म के एक अति से दूसरी अति पर पहुँची हुए एक कुदरती घटना ही कह सकते हैं। पूज्य गुरुमैया ने सन्यास लेकर कोई नाम नहीं बदला। अपने माता पिता को ही गुरु मानकर अध्यात्म के आसमान में बचपन से ही उड़ना शुरू किया।

एक अपार प्रतिभा संपन्न नारी ऊर्जा का नाम है ध्यानगुरु हरेश्वरीमैया। एक सर्जक, चिंतक, कवयित्री, आयुर्वेदज्ञ, योगिनी, धर्म प्रवक्ता, पुराणों की नवसर्जक, योग-शास्त्र और ध्यान-शास्त्र रचियता उपरांत एक सींगर, कम्पोज़र, ध्यानगुरु और वात्सल्य मूर्ति विश्व माता।

पूज्य गुरुमैया ने सिर्फ १४ साल की उम्र में ज्ञानोपलब्धि के बाद महाभिनिष्क्रमण किया। जीवन के सही दर्शन हेतु वह कूद पड़ी पूर्ण असुरक्षितता में। पर्ण-कुटी लगाकर दो वर्ष तक अन्न त्याग हुआ और आध्यात्मिक संघर्ष के साथ साथ आत्मोन्नति होती गई।

जैन शास्त्र में अनेक प्रकार के सिद्ध कहे हैं—उनमें से एक प्रकार है, स्वयंसिद्ध। पूज्य गुरुमैया को हम स्वयंसिद्ध चेतना कह सकते हैं। धर्मक्रांति करते करते ही स्वयं के बल बूते पर विद्याप्रेमी पूज्य गुरुमैया ने फिर से अभ्यास शुरू किया। बी.ए., एम.ए. के

बाद एम.एस. यूनिवर्सिटी, बड़ौदा से पीएच.डी. की डिग्री भी प्राप्त की। अपने भीतर पड़ी कलाओं को भी विकसित किया। भारत के कई राज्यों में करोड़ों लोग पूज्य गुरुमैया के सत्संग, प्रवचन, ज्ञानयज्ञ एवं ध्यान-शिविरों द्वारा लाभान्वित हुए। गुरुमैया के धर्मक्रांतिपूर्ण विचारों का प्रचंड हकारात्मक प्रतिसाद मिला। ऐसे आरोह अवरोह में से गुजरकर एक छोटी सी गंगोत्री धर्मक्रांति एवं ध्यानकार्य करते करते अब तो बन गई है एक महासागर।

अनेक नूतन ध्यान विधियों की पुरस्कर्ता पूज्य माँ यूरोप, आफ्रीका और यू.एस.ए. आदि खंडों में धर्मक्रांति और ध्यानशिविरों के लिए यात्रा कर चुकी हैं। किसी भी धर्मसंप्रदाय के संगठन में जुड़े बिना स्वपुरुषार्थ, आत्मबल और अतिचेतस शक्तियों के द्वारा पूज्य गुरुमैया ने जो नूतन धर्म अभियान का आरंभ किया है उसके लिए पूरा विश्व उसका ऋणी रहेगा तथा नई दृष्टि और नया जीवन पाता रहेगा।

मैं कहता हूँ कि पूज्य गुरुमैया ने विश्व को ध्यान के लिए तंदुरस्त माहोल, विचार, नई दृष्टि एवं दिशाएं दी हैं इसलिए विश्व पूज्य माँ का ऋणी रहेगा। परंतु पूज्य माँ हमेशा कहती हैं कि मैं तो ये सब करके अस्तित्व का ऋण चुका रही हूँ पृथ्वी पर की मेरी यात्रा के दौरान।

—पूज्य गुरुमैया का अनुग्रहपात्र शिष्य
एवं आश्रम का अंतेवासी
योगी स्वामी शैलेश्वर

साधना के सुनहरे सप्त सोपान

१. प्रत्येक विधि अनुभवी ध्यान गुरु के मार्गदर्शन में हो तो ज्यादा अच्छा।
२. प्रत्येक विधियों को अपने ढंग से नहीं परंतु उचित रूप से समझने के बाद ही साधना का आरंभ करें।
३. किसी भी विधि को कम से कम २४ मिनट करें।
४. अनुकूल विधि में कम से कम ३० दिन से लेकर ९६ दिन तक उतरें।
५. यदि संभव है तो इन ९६ दिनों के दौरान कुदरत के सानिध्य में अथवा किसी शांत आश्रम में निवास करें।
६. सात्विक आहार, सज्जनों का संग, मौन और नशाकारक पदार्थों से दूर रहना - ज्यादा हितकर है।
७. साधना समय के वस्त्र अलग रखें। सफेद, भगवा अथवा हरा रंग ज्यादा सहयोग कर पाएगा। वस्त्र खुले और स्वच्छ होने चाहिए।

- : ध्यान मंदिर :-

ए-५, सनमून पार्क, अकोटा, वडोदरा, गुजरात, भारत
www.maaharishwaridevi.com. email: info@maaharishwaridevi.com